अंक : 89
(अप्रैल-जून, 2000)

राजभाषा भारती

भारत सरकार
गृह मंत्रालय
राजभाषा विभाग

राजभाषा भारती

वर्ष : 22 अंक : 89
मई : 2000
निःशुल्क वितरण के लिए

संपादकीय

'राजभाषा भारती' का अप्रैल–जून, 2000 का अंक सुधी पाठकों को समर्पित करते हुए मुझे खुशी है। 'राजभाषा भारती' का जनवरी–मार्च, 2000 अंक 'आर्थिक सुधार' विशेषांक के रूप में निकाला गया था जिसमें आर्थिक सुधारों से संबंधित स्तरीय लेखों का समावेश था। उक्त अंक के बारे में हमें उत्साहवर्धक प्रतिक्रियाएं प्राप्त हो रही हैं जिसके लिए हम अपने पाठकों के आभारी हैं। प्रस्तुत अंक किसी विषय विशेष को लेकर नहीं निकाला गया है। इस अंक का आरम्भ, मार्च माह में भारत में पधारे अमरीका के महामहिम राष्ट्रपति श्री विलियम जे. क्लिंटन तथा भारत के प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा 22 मार्च, 2000 को संसद के दोनों सदनों के समक्ष दिए गए वक्तव्यों से किया गया है।

प्रस्तुत अंक में सम्मिलित विभिन्न लेखों में माननीय सांसद श्री जगदम्बी प्रसाद यादव के लेख 'हिंदी भारत मां के माथे की बिंदी' में संघ की राजभाषा हिंदी का पक्ष प्रतिष्ठित किया है। देश के प्रख्यात हिंदी साहित्यकार और लेखक श्री राजेन्द्र अवस्थी ने अपने लेख में हिंदी पर अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ में चर्चा की है। श्री हिमांशु जोशी, डॉ. जयंत नार्लीकर, डॉ. शुभंकर बनर्जी तथा डॉ. प्रमोद कुमार अग्रवाल के लेख भी उपयोगी तथा रोचक बन पड़े हैं। 'भारत में भारतवासी', 'डायबटीज के साथ सामान्य जीवन', 'हिंदी के विकास में विदेशी विद्वानों की भूमिका' शीर्षक लेख भी पठनीय हैं। पुस्तक समीक्षा के स्तम्भ में 'राजभाषा के 50 वर्ष' नामक पुस्तक की समीक्षा हिंदी की प्रख्यात लेखिका डॉ. माजदा असद ने बड़े विश्लेषणात्मक ढंग से की है। कुल मिलाकर यह अंक अपने आप में विषयों के वैविध्य को समेटे हुए है।

हम आशा करते हैं कि हमारे पाठकों को पिछले अंकों की भांति यह अंक भी पसंद आएगा। अपने पाठकों की प्रतिक्रियाओं की हमें उत्सुकता से प्रतीक्षा रहेगी।

उप संपादक :
सुरेंद्र लाल मल्होत्रा
अनुपमा परमार
दूरभाष : 4698054

संपादक :
(प्रेम कृष्ण गोरावारा)
दूरभाष : 4617807
(बृजमोहन सिंह नेगी)
दूरभाष : 4617764

(पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त किए गए विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। सरकार अथवा राजभाषा विभाग का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।)

पत्र-व्यवहार का पता :
संपादक राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, लोकनायक भवन (दूसरा तल)
खान मार्किट, नई दिल्ली–110 003

1368 HA/2000—1A

विषय सूची

* संसद के दोनों सदनों के समक्ष प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी का वक्तव्य		1
* संसद के दोनों सदनों के समक्ष संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति श्री विलीयम जे. क्लिंटन का वक्तव्य		4
* हिंदी-भारत मां के माथे की बिंदी	**जगदम्बी प्रसाद यादव**	16
* अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ में हिंदी	**राजेन्द्र अवस्थी**	19
* नार्वे का साहित्यिक तीर्थ : व्योर्नसन का घर	**हिमांशु जोशी**	23
* भारतीय इतिहास की बुनियाद : अतीत का प्रभाव मंडल	**हरिकृष्ण निगम**	29
* भारत में भारतवासी	**डा. के.डी. कानोडिया**	39
* विज्ञान केवल मातृ भाषा में ही पढ़ाया जाना चाहिए	**डा. जयंती नार्लीकार**	44
* डायबिटीज के साथ सामान्य जीवन	**डा. बीर सिंह**	46
* 21वीं सदी में मानव संसाधन विकास	**डा. मनोज कुमार अम्बष्ट**	52
* हिंदी के विकास में विदेशी विद्वानों की भूमिका	**प्रदीप कुमार अग्रवाल**	56
* संत रैदास की काव्य चेतना	**जय प्रकाश कर्दम**	68
* ऋषितुल्य साहित्यकार-बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय	**डा. शुभंकर बनर्जी**	74
* भारत की न्यायपालिका का स्वरूप	**डा. प्रमोद कुमार अग्रवाल**	77
* हिंदी में विज्ञान कथा साहित्य	**ज्योति भाई**	86
* साक्षरता से ही विकास की गति में वृद्धि सम्भव	**शैलेश कुमार श्रीवास्तव**	93

पुस्तक समीक्षा

* राजभाषा के 50 वर्ष	**डा. सूर्यप्रसाद दीक्षित तथा डा. गणेश मिश्र/ डा. माज़दा असद**	106
* हिंदी की भगीरथ यात्रा	**डा. कन्हैया लाल गांधी/ श्रीमती राजकुमारी देव**	108

संसद के दोनों सदनों के समक्ष प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी का वक्तव्य

नई दिल्ली, 22 मार्च, 2000 प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति श्री विलियम जे. क्लिंटन के संसद के दोनों सदनों को सम्बोधित किये जाने के अवसर पर दिए गए वक्तव्य का मूल पाठ इस प्रकार है :–

"राष्ट्रपति जी, आपके सारगर्भित सम्बोधन के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। हम आपके आभारी हैं। लोकतंत्र के बारे में आपने जो कुछ कहा है, उसने मेरी कई व्यक्तिगत स्मृतियों को ताजा कर दिया है।

आज से 45 वर्ष पहले मैंने लोकसभा सदस्य के रूप में पहली बार इस संसद में प्रवेश किया था। मैं विपक्ष की कुर्सियों पर बैठता था और अपने महान लोकतंत्र के उन मूल्यों और परम्पराओं का अवलोकन किया करता था जो हमारे संस्थापकों के मार्गदर्शन में स्थापित किये जा रहे थे।

हमारे संस्थापकों ने जिन परम्पराओं की नींव रखी थी उन्होंने इन 50 वर्षों में हमारा भली-भांति मार्गदर्शन किया है। जैसे-जैसे हमने प्रगति की है, उसी तरह हमारा लोकतंत्र भी परिपक्व हुआ है।

भारत विश्व में सबसे प्राचीन सभ्यता वाला देश है लेकिन एक गणराज्य के रूप में नया है। तथापि, लोकतंत्र, कानूनी शासन, अनेकत्व तथा दूसरे के विचारों को आत्मसात् करने की क्षमता ने अपनी जड़ें इतनी गहरी जमा ली हैं कि उन्हें कोई हिला नहीं सकता।

एक लोकतंत्र के रूप में, हम जानते हैं कि हमें समय के बदलाव के अनुरूप ही अपनी लोकतांत्रिक परिपाटियों को ढालते रहना होगा। वास्तव में, यह भी भारतीय परम्पराओं का एक हिस्सा है।

पुनर्नवीकरण, यह बहुत प्राचीन पद्धति है। सदियों से हमारी सभ्यता को अनेकत्व से शक्ति मिलती रही है जिसमें नई सोच, नई अवधारणाओं और नए प्रभावों को ग्रहण करना और अपने को उनके अनुकूल बनाना शामिल है। तथापि, कुछ आधारभूत सिद्धांत जो भारतीय अस्मिता के सार हैं, इस प्रक्रिया के दौरान भी अक्षुण्ण रहे।

हमारी स्वतन्त्रता की लड़ाई सशक्त राष्ट्रीय चेतना और हमारी जनता की व्यापक भागीदारी के साथ-साथ लोकतांत्रिक बहस के आधार पर लड़ी गई। उपनिवेशवाद के हमारे

अनुभव से निर्णय की स्वतन्त्रता, आचरण की स्वायत्तता तथा निरंतर भेदभाव एवं असमानता पैदा करने वाली सामाजिक प्रणाली एवं व्यवस्थाओं के प्रति हमारे विरोध को ओर अधिक बल मिला।

भारत पचास वर्षों से विश्वव्यापी निरस्त्रीकरण के जरिए अंतर्राष्ट्रीय शांति और न्यायसंगत सुरक्षा के लिए निरंतर प्रयास करता रहा है।

हम विश्व को परमाणु हथियारों से मुक्त कराने की दिशा में अभी भी प्रतिबद्ध हैं और हमारा विश्वास है कि विश्व में सुरक्षा का माहौल बनाने का यही एक रास्ता है। तथापि, हम देख रहे हैं कि विश्व में परमाणु हथियारों और मिसाइलों को जमा करने की होड़ लगी हुई है। यह होड़ बेरोकटोक जारी है।

हालांकि, हम संयम और जिम्मेदारी के साथ अपनी परम्परागत नीतियों का पालन करते आ रहे हैं फिर भी, न्यूनतम विश्वसनीय परमाणु प्रतिरोधक क्षमता को बनाए रखने का हमारा निर्णय हमारी सुरक्षा जरूरतों के वास्तविक आकलन पर आधारित है। हमारी रक्षा नीति हमेशा प्रतिरक्षात्मक स्वरूप की रही है। राष्ट्रपति महोदय, हमें इस बात की जानकारी है कि आप परमाणु अप्रसार मुद्दे को काफी महत्व दे रहे हैं।

हम मानते हैं कि लोकतांत्रिक देश होने के नाते हमें व्यापक विचार-विमर्श और सहयोग के आधार पर सभी उपाय करने होंगे।

भारत ने हमेशा ही अपने पड़ोसी देशों के साथ आपसी विश्वास के माहौल में तथा परस्पर लाभकारी प्रयासों के आधार पर अपने संबंध विकसित करने की कोशिश की है। दुर्भाग्यवश, हाल ही में जो घटनाएं घटी है उनसे एक पड़ोसी देश के साथ विश्वास पर आधारित संबंधों पर बुरा असर पड़ा है।

हमारा दृष्टिकोण व्यावहारिक है। हमें विश्वास है कि परिपक्व राष्ट्रों को आपसी मतभेदों का स्थाई एवं व्यावहारिक समाधान केवल शांतिपूर्ण और द्विपक्षीय बातचीत के जरिए ही ढूंढ़ना चाहिए।

अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में आक्रामक बल प्रयोग का अब कोई स्थान नहीं है।

राष्ट्रपति महोदय, जैसे-जैसे हमारी बातचीत आगे बढ़ेगी, भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका को आपसी हितों के बिन्दुओं से ऊपर उठकर दोनों देशों के संयुक्त विजन पर भी ध्यान देना चाहिए। जिस वक्तव्य पर हमने कल हस्ताक्षर किए हैं वह इस दिशा में पहला कदम है।

हमें अपने बीच मित्रता का एक जीवंत और अनूठा उदाहरण पेश करना चाहिए। आज लाखों भारतीय संयुक्त राज्य अमरीका में रह रहे हैं। आपके देश ने उन्हें अपनी क्षमता को पहचानने का मौका दिया है। इसके बदले, वे हरेक क्षेत्र में आपके देश की प्रगति में योगदान दे रहे हैं। यह सहभागिता सरकारों पर निर्भर नहीं है। यह रोज़मर्रा का आपसी कामकाजी संबंध है। इस सहभागिता से दोनों पक्षों को लाभ होगा।

यह भी संतोष की बात है कि हमारे दोनों देशों ने अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा के एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू के समाधान हेतु सहयोग देना शुरू कर दिया है।

आतंकवाद की समस्या जिसका संबंध चरमपन्थ की विचारधाराओं से जुड़ा है तथा जिसे नशीले पदार्थों के अवैध व्यापार के जरिए वित्त-पोषित किया जाता है, आज राष्ट्रों के लिए एक सबसे बड़ी चुनौती बनी हुई है। आज हमें इस बात पर विचार करने की जरूरत है कि क्या हम इस बुराई जिसकी बुनियाद घृणा और हिंसा पर टिकी है तथा जो लोकतंत्र के आदर्शों के बिल्कुल विरूद्ध है, की जड़ पर प्रहार करने का पर्याप्त प्रयास कर रहे हैं।

राष्ट्रपति महोदय, आपका अगामन दोनों देशों, जिनमें स्वाभाविक रूप से सहयोगी राष्ट्र बनने की सभी संभावनाएं मौजूद हैं, के लिए नई सदी में एक नई यात्रा की शुरुआत है इस संदर्भ में हमें महान् अमरीकी कवि वाल्ट व्हिटमैन के भावप्रवण शब्दों को याद करना उचित होगा। व्हिटमैन ने यह उल्लेख करते हुए कि **"भारत की यात्रा केवल यात्रा ही नहीं बल्कि उससे भी कहीं अधिक महत्व रखती है"**, भारत पर लिखी अपनी लम्बी और प्रशंसा भरी कविता में हमारे दोनों देशों के लोगों का आह्वान किया था :

"आगे बढ़ो–केवल गहरे समुद्र में आगे बढ़ो
ऐ! दुःस्साहसी आत्मा, मैं तुम्हारे साथ और तुम मेरे साथ मिलकर ढूँढ़ो,
क्योंकि हमें वहाँ जाना ही है, जहाँ अभी तक किसी नाविक ने
जाने का साहस नहीं जुटाया है।"

"Sail forth-steer for the deep waters only,
Reckless O soul, exploring, I with thee, and thou with me,
For we are bound where mariner has not yet dared to go."

श्रीमान विलियम जेफरसन क्लिंटन, मैं भारत के लोगों की ओर से आपको और आपके महान् देश के लोगों को शुभकामनाएं देते हुए अपनी बात समाप्त करता हूँ। मुझे उम्मीद है कि भारत की आपकी यात्रा यादगार साबित होगी। हम आपको याद रखेंगे और हमें उम्मीद है कि आप हमें याद रखेंगे।

धन्यवाद।"

भारतीय संसद के दोनों सदनों को संबोधित, अमरीका के राष्ट्रपति महामहिम श्री विलियम जे. क्लिंटन का वक्तव्य

22 मार्च, 2000 संसद भवन, नई दिल्ली। राष्ट्रपति महोदय, उप राष्ट्रपति महोदय, प्रधानमंत्री महोदय, लोकसभा अध्यक्ष एवं लोकसभा एवं राज्यसभा के सदस्यगण, मुझे आज आपको और आपके माध्यम से भारत की जनता को संबोधित करते हुए विशेष सम्मान का अनुभव हो रहा है। यह मेरे लिए गौरव की बात है कि आज इस अवसर पर मेरे साथ मेरे मंत्रिमंडल के सदस्य और व्हाइट हाउस के अधिकारी और संयुक्त राज्य अमरीका की संसद के दोनों राजनैतिक दलों के सदस्य बड़ी संख्या में मौजूद हैं। हम सब यहां अत्यन्त गौरवान्वित महसूस कर रहे हैं और जिस गर्मजोशी से आपने हम सबका स्वागत किया है उसके लिए हम आपके आभारी हैं।

मैं भारत की जनता को भी धन्यवाद देना चाहूंगा जिन्होंने मेरी पुत्री और सास और इससे पहले भारत की यात्रा पर आई मेरी पत्नी और मेरी पुत्री को इतना स्नेह दिया। (तालियां)

मैं बड़ी उत्सुकता से इस दिन की प्रतीक्षा कर रहा था। भारत की यात्रा मेरे लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है, विशेष रूप से इस दृष्टि से कि मुझे 'गांधी स्मारक' जाने का अवसर मिला जिससे कि मैं संयुक्त राज्य अमरीका के सभी लोगों की ओर से गांधी के जीवन, उनके कार्यों और विचारों के प्रति अपना आभार व्यक्त कर सका, जिनके बिना संयुक्त राज्य अमरीका की महान नागरिक अधिकार क्रांति कभी भी शांतिपूर्ण ढंग से सफल नहीं हो सकती थी। (तालियां)

जैसा कि प्रधानमंत्री श्री वाजपेयी ने कहा है, भारत और अमरीका सहज रूप से मित्र राष्ट्र हैं, दोनों ही राष्ट्रों का जन्म स्वाधीनता के मूल्यों से हुआ, दोनों ही देशों को अपनी ताकत अपनी विविधता से हासिल होती है। दोनों ही देश एक दूसरे में और अधिक मानवीय और न्यायोचित विश्व की आकांक्षा का प्रतिबिंब देखते हैं।

एक कवि ने कहा था कि दुनिया के निवासियों को दो हिस्सों में बांटा जा सकता है "एक वे लोग जिन्होंने ताजमहल देखा है और दूसरे वे जिन्होंने ताजमहल नहीं देखा है" (हंसी)। कुछ ही घण्टों बाद मुझे उन सौभाग्यशाली लोगों में शामिल होने का अवसर प्राप्त हो जाएगा जिन्होंने ताजमहल देखा है। मुझे उम्मीद है कि मेरी इस यात्रा से अमरीका वासियों को काफी हद तक नए भारत को जानने और बेहतर ढंग से समझने में मदद मिलेगी। मुझे उम्मीद है कि मेरी इस यात्रा से भारत भी अमरीका को बेहतर समझ सकेगा। परस्पर विचारों के आदान–प्रदान से परस्पर सम्मान और सामूहिक प्रयासों की सच्ची सहभागिता

कायम हो सकेगी।

दूर से देखने पर भारत प्रायः एक ऐसे कैलाइडोस्कोप की भांति दिखता है, जिसमें परस्पर विरोधी बिंब दिखाई देते हैं, जो संभवतः सतही हैं। क्या यह आण्विक शस्त्रों का प्रतीक है या अहिंसा का? क्या यह गरीबी और असमानता से लड़ने वाला देश है या विश्व का सबसे बड़ा मध्यम वर्गीय समाज ? क्या यह अभी भी सांप्रदायिक तनावों से ग्रस्त है या समाज के सभी अंगों को साथ लेकर चलने वाला इतिहास में सर्वाधिक कामयाब देश है। यह बॉलीवुड है या सत्यजीत रे ? श्वेता शेट्टी है या अल्लारक्खा ? हैंडलूम है या हाइपर लिंक ?

सच तो यह है कि आपके इस महान राष्ट्र के बारे में कोई एक तस्वीर बना लेना उसके साथ न्याय करना नही है। लेकिन जटिलताओं और प्रत्यक्ष विसंगतियों के होते हुए भी मुझे विश्वास है कि भारत में हमें कुछ बहुत ही बुनियादी बातें सीखने को मिलती हैं।

पहली सीख लोकतंत्र के बारे में है। अभी भी कुछ ऐसे लोग हैं जो इस बात से इंकार करते हैं कि लोकतंत्र एक विश्वव्यापी महत्वाकांक्षा है; जिनका कहना है कि यह एक खास संस्कृति से जुड़े लोगों के लिए ही है या एक निश्चित सीमा तक ही आर्थिक रूप से विकसित समाज के लिए काम कर सकता है। भारत 52 वर्षों से उन्हें झूठा साबित करता आया है। यह एक ऐसा देश है जहां 20 लाख से भी अधिक लोग स्थानीय सरकारों में निर्वाचित होकर कार्यभार संभालते हैं। इस देश ने दिखा दिया है कि जिसके पास साधन सबसे कम हैं वही अपने मंत का सबसे ज्यादा मूल्य आंकता है। आपकी संस्कृति में जो विशिष्टता है उससे हटने की बात तो दूर रही, लोकतंत्र ने वास्तव में आपकी संस्कृति की भव्यता को और भी बढ़ाया है तथा एक ऐसा गठबंधन प्रदान किया है जो आपको आपस में जोड़े रखता है।

दूसरा पाठ जो भारत ने पढ़ाया है वह है यहां की विविधता। इस बारे में आज सुबह ही आपने कुछ विचार सुने। लेकिन सम्पूर्ण विश्व में एक स्वर में यह कहने वाले लोग भी हैं कि जातीय और धार्मिक–विविधता एक ख़तरा है, जिनका दावा है कि अलग–अलग संप्रदाय के लोग एक दूसरे को न मारें, इसका एक मात्र उपाय यह है कि उन्हें जितना हो सके एक दूसरे से अलग रखा जाए। लेकिन भारत ने हमें बेहतर रास्ता दिखाया है। आपने जितनी भी परेशानियां झेली हैं, निश्चित रूप से उससे कहीं अधिक दुख निर्दोष लोगों को उपमहाद्वीप में जातीयता और धर्म के कारण विभाजित करने के कारण उठाना पड़ा, इसकी तुलना में शांति और सद्भावपूर्वक लोगों को एकजुट करने के प्रयास उतने कष्टदायी नहीं होते।

आपने विश्व को दिखा दिया कि है कि विकट परिस्थितियों में भी अपनी विशिष्टता बनाए हुए कैसे जीया जाता है। आपने दिखा दिया है कि सहिष्णुता और परस्पर सम्मान कई तरह से हमारे ज़िंदा रहने की कुंजी है। यही बात पूरे विश्व को सीखनी चाहिए।

भारत ने हमें जो तीसरी बात सिखाई है वह है विश्वव्यापीकरण और यह वर्तमान समय का मुख्य मुद्दा हो सकता है। अधिकांश लोगों का विश्वास है कि विश्वव्यापीकरण की ताकतों में विभाजन के तत्व मौजूद हैं, ये गरीब और अमीर के बीच के फासले को और बढ़ा सकते हैं। यह शंका जायज है, पर मेरा विश्वास है कि यह गलत है।

जैसे–जैसे बड़े और छोटे उत्पादकों तथा दूर व निकटवर्ती ग्राहकों का अंतर कम प्रासंगिक होता जा रहा है, वैसे–वैसे विकासशील देशों को न केवल सफलता के अवसर मिलेंगे बल्कि अधिक लोगों की दरिद्रता इतनी शीघ्रता से दूर की जा सकेगी जितनी कि मानव इतिहास में पहले कभी नहीं हुई। पुरानी अर्थव्यवस्था में स्थान का ही महत्व था। लेकिन नई अर्थव्यवस्था में सूचना, शिक्षा तथा प्रेरणा सर्वाधिक महत्वपूर्ण है...और भारत इस बात को साबित कर रहा है।

आपने उदार बाज़ार–व्यवस्था अपना ली है और आपकी अर्थव्यवस्था, विश्व में तेज़ी से विकसित हो रही 10 अर्थव्यवस्थाओं में से एक है। आप जिस विकास–दर को प्राप्त कर सकने में सक्षम हैं, उसके आधार पर भारतीय लोगों का जीवन स्तर 20 वर्षों में 500 प्रतिशत तक बढ़ सकता है। आपने सूचना प्रौद्योगिकी अपनाई और अब स्थिति यह है कि जब अमरीका की व अन्य बड़ी सॉफ्टवेयर कंपनियां उपभोक्ता एवं ग्राहक तलाशती हैं तो उन्हें सिएटल की तरह बेंगलूर में भी किसी विशेषज्ञ से सम्पर्क करना पड़ सकता है। (तालियां)

आपने सत्ता का विकेंद्रीकरण कर दिया है, जिससे अधिकाधिक व्यक्तियों और समुदायों को सफलता प्राप्त करने का मौका मिला है। इस प्रकार आपने ऐसा कार्य कर दिखाया है जो प्रत्येक सफल देश अपने तरीके से अपनाने का प्रयास कर रहा है; विश्वव्यापीकरण के लिए लाइसेंस राज अनुकूल नहीं है, इसके लिए तो वे राष्ट्र अनुकूल होते हैं जिनमें पंचायती राज हो। इस नज़र से विश्व आपकी ओर अग्रसर है।

नई सहस्त्राब्दि में, प्रत्येक महान देश को इस एक अति महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर देना होगा : हम अपनी महानता को कैसे परिभाषित करें ? इस संबंध में प्रत्येक देश, जिसमें अमरीका भी शामिल है, कल की आर्थिक व सैन्य सुदृढ़ता की पुरानी परिभाषा से ही जुड़ा रहना चाहता है। परंतु संयुक्त राज्य अमरीका व भारत के लिए सच्चा नेतृत्व यहां के आदर्शों और अपने लोगों की क्षमता में ही निहित है।

मैं यह मानता हूं कि भारत ने विश्व को जो बहुत से उपहार दिए हैं उनमें से सबसे बड़ा उपहार वह उदाहरण है जो यहां के लोगों ने विश्व के सामने रखा–"मध्य रात्रि से सहस्त्राब्दि तक"। ज़रा सोचिए, कि मानवजाति के समक्ष जितनी भी चुनौतियां हो सकती हैं वे सभी भारत में मौजूद हैं, और यहां प्रत्येक चुनौती का समाधान भी मिल जाता है–लोकतंत्र में विश्वास; विविधता के प्रति सहिष्णुता; सामाजिक परिवर्तन को आत्मसात करने की इच्छाशक्ति और इसीलिए अमरीकी लोग भारत की प्रशंसा करते हैं; इसीलिए हम इस

क्षेत्र में व विश्व में भारत के नेतृत्व का समर्थन करते हैं और इसीलिए हम अपनी साझेदारी को नए मुकाम पर ले जाना चाहते हैं, ताकि हम अपने साझे मूल्यों व हितों को आगे बढ़ा सकें और उन मतभेदों को सुलझा सकें जो अभी तक बरकरार हैं।

काफी समय तक ऐसा करना सम्भव नहीं था। हमारे लोकतांत्रिक आदर्शों की वजह से हमें शुरुआत करने का अवसर मिला और हमारे शांति एवं समृद्धि के सपने का लक्ष्य भी एक ही था, परंतु बहुत लम्बे समय तक पूर्व व पश्चिम, उत्तर व दक्षिण के बीच बातचीत का आधार बहुत कम रहा। लेकिन बहुत अच्छा हुआ कि अब राष्ट्रों व लोगों, अर्थव्यवस्था व संस्कृतियों के बीच की पुरानी बाधाएं दूर हो रही हैं और उनका स्थान अब सहयोग और वाणिज्य के विस्तृत नेटवर्क ने ले लिया है। अपने खुले और उद्यमशील समाज की वजह से भारत और अमरीका उन नेटवर्कों के केंद्र में हैं। हमें उनका विस्तार करना होगा और उन्हें खतरा पहुंचाने वाली ताकतों को परास्त करना होगा।

सफलता के रास्ते में, मैं समझता हूं हमारे सामने चार बड़ी चुनौतियां हैं जिनका भारत और संयुक्त राज्य अमरीका को मिलकर मुकाबला करना होगा—ये चुनौतियां आने वाले वर्षों में हमारी सहभागिता को परिभाषित करेंगी।

इन चुनौतियों में सर्वप्रथम है हमारे अपने आर्थिक संबंधों में सुधार। अमरीका के लोग आपकी खुली अर्थव्यवस्था के लिए किए गए प्रयासों, आर्थिक सुधार की नई लहर के प्रति आपकी वचनबद्धता; अपने सभी नागरिकों को विकास के लाभ पहुंचाने के लिए आपके दृढ़ निश्चय की सराहना करते हैं। हमें व्यापार और निवेश में सबसे बड़े भागीदार के रूप में भारत के विकास में सहायक होने का गर्व है। हम चाहते हैं कि हमारे आर्थिक समझौतों से अधिक से अधिक भारतीय और अमरीकी लाभान्वित हों विशेषकर, सूचना प्रौद्योगिकी, जैव प्रौद्योगिकी तथा स्वच्छ ऊर्जा (क्लीन एनर्जी) के प्रतिस्पर्धात्मक क्षेत्रों में।

निजी क्षेत्र इस प्रगति को गति प्रदान करेगा किंतु सरकार के नाते हमारा यह कर्तव्य है कि हम ऐसी स्थितियां पैदा करें जो उनके लिए सहायक हों और अपने बीच व्यापार और निवेश की शेष अड़चनों को दूर करें।

हमारे सामने दूसरी चुनौती इस तरह से सतत् विश्व आर्थिक विकास की है जिससे कि हमारे देशों के भीतर और बाहर रहने वाले अमीर और गरीब लोगों का भी जीवन स्तर समान रूप से ऊपर उठे। विश्व का एक हिस्सा आज तेज़ी के साथ परिवर्तन के दौर से गुज़र रहा है और लाभकारी स्थिति में है जबकि एक बहुत बड़ा हिस्सा अभी भी केवल जीवन–निर्वाह के लिए ही जद्दोजहद कर रहा है। विश्व का एक हिस्सा सूचना–युग में रहता है और विश्व का दूसरा हिस्सा ऐसे युग में भी नहीं पहुंचा है जहां उसे साफ पानी भी उपलब्ध हो सके। प्रायः ये दोनों स्थितियां साथ–साथ मौजूद हैं। यह स्वीकार्य नहीं है, असह्य और अनावश्यक है तथा इसे एक क्षेत्रीय संकट के रूप में ही नहीं देखा जाना चाहिए। चाहे एक

स्थान पर हो अथवा पूरे विश्व में, इस नई अर्थव्यवस्था में गरीबी मानव–जाति के लिए अभिशाप है और हमारी खुशहाली के रास्ते में एक खतरा है।

यह समस्या सचमुच बहुत बड़ी है, यह बात आप मुझसे बेहतर जानते हैं। किंतु शायद समूचे इतिहास में पहली बार ऐसा हुआ है, और कुछ ही लोग असहमत होंगे कि हम इसका हल जानते हैं। हमें पता है कि हमें शिक्षा और साक्षरता की ओर ध्यान देने की जरूरत है जिससे कि हमारे बच्चे ऊंचे सपने देख सकें और उन्हें पूरा करने के लिए साधन सम्पन्न हों। हम जानते हैं कि हमें विकासशील देशों में लड़कियों और लड़कों की शिक्षा के लिए विशेष रूप से वचनबद्ध होने की आवश्यकता है। आज विकास के बारे में हम जो कुछ भी जानते हैं उससे हमें पता चलता है कि जब सुविज्ञता, स्वास्थ्य, आर्थिक अवसर तथा नागरिक अधिकारों तक महिलाओं की पहुंच हो जाती है तो बच्चों का विकास होता है, परिवार तरक्की करते हैं और देश खुशहाल होते हैं।

यहां भी हम यह देखते हैं कि भारत में जब भी कोई समस्या हो, उसके हल साथ–साथ कैसे ढूंढ़ लिए जाते हैं। प्रत्येक अर्थशास्त्री जो महिलाओं को समर्थ बनाने की बात करता है, सबसे पहले भारत के केरल राज्य की उपलब्धियों की बात करता है–मुझे मालूम था कि यहां कोई न कोई केरल से ज़रूर होगा।...(हंसी और तालियां) धन्यवाद।

विकास के पाथ पर आगे बढ़ने के लिए, हम जानते हैं कि हमें उन बीमारियों को खत्म करना होगा जो लोगों को मौत के मुंह में ले जाती हैं और उनके विकास में बाधक बनती हैं। पिछले दिसम्बर में भारत में 140 मिलियन बच्चों को पोलियो प्रतिरक्षण औषधि पिलाकर इस भयानक बीमारी से उनकी प्रतिरक्षा की गई; मानव इतिहास में, स्वास्थ्य की दिशा में यह सबसे बड़ा प्रयास है। मैं इसके लिए आपको बधाई देता हूँ। (तालियां)

मैंने संयुक्त राज्य अमरीका में मलेरिया, टी.बी. और एड्स के लिए–जो हमारे समय की सबसे अधिक घातक और संक्रामक बीमारियां हैं–वैक्सीन बनाने के कार्य को तेज़ करने का आग्रह किया है। इस वर्ष जुलाई में, जब हमारे सहयोगी जापान में होने वाली जी–8 की बैठक में मिलेंगे, मैं उनसे इसमें सहयोग देने के लिए कहूंगा।

परन्तु इतना ही काफ़ी नहीं है, क्योंकि प्रभावी वैक्सीनों के विकसित होने में अभी बहुत समय लगेगा। विशेषकर, एड्स के लिए हमें अभी से इसके निवारण के प्रति प्रतिबद्ध होना चाहिए और इसका अर्थ है कि हम इसके बारे में सीधे बात करें और इसे कलंक न समझें, जैसा कि प्रधानमंत्री श्री वाजपेयी ने कहा कि किसी को भी एड्स के बारे में इस तरह बात नहीं करनी चाहिए कि मानो यह किसी और की समस्या हो। संयुक्त राज्य अमरीका के लिए यह बहुत समय से काफी बड़ी समस्या रही है। अब यह आपके लिए भी एक बड़ी समस्या बन गई है। इसके विरुद्ध सतत संघर्ष में, मैं आपसे अमरीका के सहयोग का वादा करता हूँ। (तालियां)

विकास की दिशा में अग्रसर होने के लिए, हम जानते हैं कि हमें उन लोगों का भी साथ देना चाहिए, जो इस क्षेत्र में और पूरे विश्व में मानवाधिकारों और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे हैं, क्योंकि जैसा कि अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन ने कहा है, मनुष्य की ज़रूरतों को पूरा करने, मानवता पर आने वाली विपत्तियों को रोकने की दिशा में सरकार की किसी भी प्रणाली ने इतना अच्छा काम नहीं किया है, जितना कि लोकतंत्र ने किया है। मुझे गर्व है कि इन गर्मियों में, वारसा में, जब हम लोकतंत्रों के समुदाय का प्रांरभ करेंगे, तब अमरीका और भारत एक साथ खड़े होकर इतिहास को एक सही दिशा देंगे।

लोगों के जीवन के उत्थान के लिए ये सब कदम उठाए जाने आवश्यक हैं। परंतु, इसके अलावा एक कदम और भी है। अधिकाधिक व्यापार करके उससे जो प्रगति होगी, उससे हम शिक्षा, बेहतर स्वास्थ्य और लोकतांत्रिक शक्ति के लाभों का कई गुना बढ़ा सकते हैं; इसीलिए, मैं आशा करता हूँ कि नए विश्वव्यापी व्यापार की शुरुआत करने के लिए हम मिलकर काम करेंगे जिससे सभी का आर्थिक विकास सम्भव हो सकेगा।

विश्व व्यापार संगठन के लाभों में से एक लाभ यह है कि इसने विकासशील देशों को विश्वव्यापी व्यापार नीति में अपने विचारों को और अधिक अच्छी तरह से अभिव्यक्त करने का अवसर दिया है। विकासशील देशों ने इस अवसर का प्रयोग समृद्ध देशों से यह आग्रह करने के लिए किया है कि वे अपने बाज़ारों को और अधिक उदार बनाएं, जिससे सभी को प्रगति करने का अवसर मिल सके। यही वह बात है, जो विश्व व्यापार संगठन के विरोधी अब तक हज़म नहीं कर पा रहे हैं।

हमें उन्हें यह बात याद दिलानी होगी कि जब भारत, ब्राजील और इंडोनेशिया के लोग खुले व्यापार की बात करते हैं, तो वे ऐसा किसी संकीर्ण कॉर्पोरेट लाभ के लिए नहीं कह रहे हैं, बल्कि वे मनुष्य जाति के ऐसे बड़े भाग के लिए बोल रहे हैं, जिनके लिए विकास उतना ही आवश्यक है। यह ज़रूरी नहीं है कि व्यापार के पर्यावरणीय और श्रम मानक श्रेष्ठता के अन्तिम छोर तक हों और न ही यह होना चाहिए कि भय के कारण विश्व का एक समुदाय हमेशा व्यापार में सबसे नीचे स्तर पर रहे।

लेकिन हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जो लोग विश्वव्यापीकरण के प्रभाव स्वरूप उत्पन्न होने वाली असामनता तथा पर्यावरण के विघटन को लेकर चिंतित हैं, वे मानवता के एक बड़े भाग का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये वे लोग हैं जो मानते हैं कि व्यापार केवल सम्पन्नता में वृद्धि का साधन–मात्र न बनकर सामाजिक समानता को भी बढ़ावा दे; ये लोग नेहरू की ही भांति जीवन की एक ऐसी व्यवस्था का सपना देखते हैं, जो हमारी भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ–साथ हमारे बौद्धिक और आत्मिक विकास में भी सहायक हो।

हम धनी देशों के संरक्षणवाद में उलझे बिना इन नैतिक मूल्यों को और आगे बढ़ा

सकते हैं। इसमें संदेह नहीं है कि मुक्त व्यापार के लिए आम सहमति बनाए रखने के वास्ते हमें इन नैतिक मूल्यों को आगे बढ़ाने के लिए रास्ता भी तलाश करना होगा। मुझे इस बात ने और केवल इसी बात ने प्रेरित किया है कि मैं श्रम, पर्यावरण, व्यापार और विकास के बीच के परस्पर संबंधों पर चर्चा करूं।

मैं आपको याद दिलाना चाहूंगा—और इस बात पर ज़ोर देना चाहूंगा कि दुनिया के किसी भी सम्पन्न देश की तुलना में अमरीकी बाज़ार अधिक मुक्त है। हमारा ट्रेड डेफिसिट सबसे अधिक है। हमारी अर्थव्यवस्था भी सुदृढ़ है क्योंकि हमने दुनिया भर के लोगों के श्रम से निर्मित उत्पादों और सेवाओं का स्वागत किया है। मैं मुक्त भूमंडलीय व्यापार व्यवस्था का पक्षधर हूं। लेकिन हमें इस कार्य को ऐसे ढंग से करना होगा, जिससे विश्वभर में सामाजिक न्याय की व्यवस्था कायम हो सके। (तालियां)

हमारे सामने तीसरी चुनौती इस तथ्य को समझने की है कि इस सूचना प्रधान युग में समृद्धि और विकास को पाने के लिए हमें औद्योगिक युग के कुछ पुराने सिद्धांतों को छोड़ना होगा। उदाहरण के लिए, आज बच्चों को काम पर लगाने के बजाए स्कूल में शिक्षा दिलाने से अर्थव्यवस्था का विकास अधिक तेज़ी से होता है। उन उद्योगों पर नज़र डालें, जो आज अमरीका और भारत में विकास का मार्ग प्रशस्त कर रही हैं। जिस प्रकार तेल ने उन देशों को सम्पन्न बनाया, जिनके पास 20वीं सदी में तेल के भंडार थे, उसी प्रकार 21वीं सदी में ज्ञान की सम्पदा उन देशों को सम्पन्न बना रही है, जिनके पास यह सम्पदा है। अंतर केवल इतना है कि ज्ञान का उपयोग सभी लोग सभी स्थानों पर कर सकते हैं और इसका भंडार कभी खाली नहीं होगा।

हमें ऐसे तरीके खोजने होंगे जो उच्च विकास दर बनाए रखने के साथ–साथ पर्यावरण की सुरक्षा और जलवायु पर पड़े हुए विपरीत प्रभावों को खत्म कर सकें। मुझे पूरा विश्वास है कि हम यह भी कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, अगले कुछ वर्षों में हम ऐसे वाहन बना सकेंगे, जो आज प्रयोग में लाए जा रहे वाहनों की तुलना में तीन, चार या पांच गुना अधिक कार्यक्षम होंगे। जल्द ही हमारे वैज्ञानिक ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत अधिक व्यापक स्तर पर और कम कीमत पर उपलब्ध करा देंगे। उदाहरण के लिए, जल्दी ही रसायनज्ञ ऐसे तरीके खोज लेंगे जिनकी सहायता से केवल एक गैलन गैसोलिन का प्रयोग करके जैव ईंधनों, कृषि ईंधनों से आठ या नौ गैलन ईंधन तैयार किया जा सकेगा।

भारतीय वैज्ञानिक इस प्रकार के अनुसंधान में अग्रणी हैं—वे सौर–ऊर्जा का प्रयोग करके ग्रामीण समुदायों को बिजली पहुंचाने में सभी का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं; भीड़ भरे शहरों में प्रयोग करने के लिए विद्युत–कारों का विकास कर रहे हैं; कृषि अवशिष्ट को बिजली में बदल रहे हैं। अगर स्वच्छ ऊर्जा के लिए हम अपने सहयोग को सुदृढ़ कर सकते हैं तो हम अपनी अर्थव्यवस्था को मजबूत बना लेंगे, अपने लोगों के स्वास्थ्य को बेहतर बना सकेंगे तथा गरमाते भूमण्डल की समस्या से निबट सकेंगे। यह हमारे नए सहयोग समझौते का

महत्वपूर्ण अंग होना चाहिए।

हमारे समक्ष चौथी चुनौती लोकतंत्र और विकास के सुपरिणामों को ऐसी ताकतों से बचाने की है जिनसे इन्हें नुकसान पहुंचने का खतरा है। हमारे समक्ष संगठित अपराध और नशीले पदार्थों का खतरा है। हमारे समक्ष मनुष्यों के दुर्व्यापार जैसे ऐसे पापकर्म की समस्या है जो दास–प्रथा का नया रूप है और निस्संदेह, उग्रवाद का खतरा भी हमारे समक्ष मौजूद है। हमारा और आपका देश इस सबको अच्छी तरह से जानता है।

इंडियन एअरलाइन्स के विमान अपहरण के पूरे प्रकरण में आपको जिस वेदना ओर संताप से गुज़रना पड़ा, अमरीका के लोगों ने उसे महसूस किया। उस वेदना को प्रत्यक्ष रूप से तब देखा जब मैं उस अपहृत विमान में मारे गए युवक के माता–पिता और उसकी विधवा पत्नी से मिला। (तालियां) आपके साथ–साथ हमें भी कश्मीर में सिक्खों की हत्या का दुःख है...(तालियां)...और इस दुःख की घड़ी में हम हृदय से उनके परिवारों के साथ हैं। हम आपके साथ मिलकर न्याय प्रणाली को मज़बूत बनाने, आतंकवाद के खिलाफ़ अपने सहयोग को सुदृढ़ करने की दिशा में काम करेंगे। (तालियां) हम अपनी सतर्कता में कभी भी ढील न आने दें ओर अपराधियों को भय और आतंक का ऐसा वातावरण न बनाने दें जिससे हमें अपने लोकतांत्रिक आदर्शों से विचलित होना पड़े।

हमारे समक्ष एक अन्य ख़तरा बड़े पैमान पर तबाही करने वाले शस्त्रों का ऐसे हाथों में पहुंचना है जिन्हें इन हथियारों का प्रयोग करने में कदाचित कोई संकोच नहीं होगा। मेरा मानना है कि 21वीं सदी में हम सबके समक्ष सुरक्षा को यह सबसे ज़बरदस्त चुनौती है। इसीलिए हमें रासायनिक और जैविक शस्त्रों के प्रसार को रोकने के प्रति सतर्क रहना होगा; और इसीलिए हम दोनों देशों को नाभिकीय प्रसार पर अपने शेष मतभेदों को सुलझाने के लिए एक–साथ मिलकर काम करते रहना होगा।

मुझे इस बात का अहसास है कि मैं आपके समक्ष एक ऐसे राष्ट्र के प्रतिनिधि के रूप में बोल रहा हूँ जो 55 वर्ष से भी अधिक समय से एक नाभिकीय महाशक्ति है। लेकिन वर्ष 1988 से अब तक संयुक्त राज्य अमरीका ने 13,000 से भी अधिक नाभिकीय शस्त्रों को निष्क्रिय बना दिया है। हमने रूस को भी अपने नाभिकीय शस्त्रों को निष्क्रिय बनाने तथा शेष सामग्री की सुरक्षा करने में उसकी मदद की है। हम रूस के साथ एक संधि की रूपरेखा तैयार करने पर सहमत हो गए हैं जिससे हमारे शेष नाभिकीय शस्त्रागार आधे से भी कम रह जाएंगे। हम और कोई विनाशकारी सामग्री नहीं बना रहे हैं; कोई नई भू अथवा पनडुब्बी–आधारित मिसाइलें नहीं बना रहे हैं और न ही कोई नया नाभिकीय परीक्षण कर रहे हैं।

दक्षिण अमरीका से लेकर दक्षिण अफ्रीका तक, सभी राष्ट्र यह महसूस करते हुए कि नाभिकीय युग अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित भविष्य लेकर नहीं आएगा, इन शस्त्रों का दृढ़तापूर्वक त्याग कर रहे हैं। विश्व के अधिकांश राष्ट्र नाभिकीय शस्त्रों को समाप्त करने

की दिशा में अग्रसर हो रहे हैं। इस उद्देश्य को आगे नहीं बढ़ाया जा सकता, अगर कहीं भी, कोई भी देश इस उद्देश्य की विपरीत दिशा में चलता है।

मैं पूर्ण सम्मान के साथ यह बात कह रहा हूं। अपने हित भारत ही निश्चित कर सकता है। केवल भारत...(हर्ष ध्वनि)...केवल भारत ही यह जान सकता है कि वह आज सही मायनों में अधिक सुरक्षित है या कि परीक्षणों से पहले था।

भारत को ही यह निर्णय लेना है कि क्या नाभिकीय (परमाणु) और मिसाइल क्षमता बढ़ाने से उसे लाभ होगा और क्या उसके पड़ोसी देश भी उसका अनुसरण करेंगे ? केवल भारत ही यह जानता है कि मानव विकास संबंधी अपने लक्ष्यों को पूरा करते हुए वह परंपरागत और नाभिकीय (परमाणु) हथियारों के क्षेत्र में सतत् निवेश कर सकता है या नहीं; ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जो दूसरे देश पूछ सकते हैं लेकिन इनका उत्तर केवल आपके पास है।

मैं बतौर मित्र आपको शीतयुद्ध के दौरान, अमरिका के निजी अनुभवों के बारे में बता सकता हूँ। भौगोलिक रूप से, हम सोवियत संघ से काफ़ी दूर हैं। हमारे बीच कभी भी सीधे सशस्त्र युद्ध नहीं हुआ। अपने विरोधी देश के साथ वर्षों तक सीधे बातचीत के माध्यम से हम एक दूसरे की क्षमताओं, सिद्धांतों और इरादों को भली भांति जानते थे। चूंकि नाभिकीय हथियार सस्ते नहीं है इसलिए हम दोनों ने अपने कमांड और नियंत्रण–तंत्र को चुस्त रखने के लिए अरबों डालर खर्च किए।

इसके बावजूद कभी–कभी मैं मजाक में भी कहता हूं, इस तथ्य के बावजूद कि दोनों की गुप्तचर व्यवस्था बेहतर थी और यह अच्छी बात थी...(हंसी)...इस सबके बावजूद भी हम नाभिकीय युद्ध के करीब आ गए। हमने सीखा कि दुर्घटना या भूल–चूक को रोकने के लिए केवल रक्षात्मक दृष्टिकोण पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। नाभिकीय क्षमता लिए खड़े रहने की स्थिति में सबसे ज्यादा खतरनाक यह विश्वास करना है कि अब कोई खतरा नहीं है।

मैं वही बात दोहराता हूँ, जो मैंने आरंभ में कही थी। भारत अग्रणी है, महान राष्ट्र है, जो अपनी विशालता, अपनी उपलब्धियों और अपने उदाहरण से मौजूदा दृष्टिकोण को आकार दे सकता है। हम में से कोई भी देश जब उस प्रावरण को ओढ़े या उस हैसियत का दावा करे तो सबसे पहले यह आवश्यक है कि हम यह भी स्वीकार करें कि हमारे इन कार्यों का प्रभाव हमारी सीमाओं के बाहर भी पड़ेगा। उच्च महत्वाकांक्षाओं वाले महान राष्ट्रों को यह अवश्य सोचना चाहिए कि उनके कार्यों से नेहरू द्वारा उल्लिखित "मानवता के व्यापक हितों" में वृद्धि होगी या अवरोध आएगा।

इस प्रकार, भारत की परमाणु नीति का प्रभाव इसकी भौगोलिक सीमाओं के बाहर भी पड़ेगा; इससे नाभिकीय (परमाणु) हथियारों के प्रसार को रोकने के लिए किए जा रहे

प्रयासों को धक्का लगेगा; जिन राष्ट्रों ने इन हथियारों को न अपनाने का विकल्प चुना है वे हतोत्साहित होंगे तथा इससे अन्य राष्ट्रों को अपने विकल्प खुले रखने का प्रोत्साहन मिलेगा। लेकिन यदि भारत का परमाणु परीक्षण विश्व को हिला सकता है तो भारत के नेतृत्व में विश्व, परमाणु हथियारों का प्रसार रोकने के लिए भी प्रेरित हो सकता है।

भारत और अमरीका ने परमाणु–परीक्षण बंद करने की अपनी प्रतिबद्धता की पुनः पुष्टि की है और इसके लिए मैं प्रधानमंत्री, सरकार और भारत के लोगों का धन्यवाद करता हूं। लेकिन अपने हित में...मैं इसे दोहराता हूं...अपने हित में हम और अधिक कर सकते हैं। मेरा विश्वास है कि दोनों देशों को व्यापक परमाणु परीक्षण निषेध संधि में शामिल होना चाहिए; और परमाणु हथियारों के लिए परमाणु विस्फोट (मिसाइल) की सामग्री का उत्पादन बंद करने, आयात–नियंत्रण सुदृढ़ करने की संधि के संबंध में बातचीत करने के लिए कार्य करना चाहिए। भारत परमाणु और मिसाइल हथियारों की दौड़ में शामिल न होने की अपनी प्रतिबद्धता को ध्यान में रखते हुए रक्षा–नीतियां तैयार कर सकता है। प्रधानमंत्री ने इसकी पिछले कुछ दिनों में ज़ोरदार ढंग से पुष्टि की है।

मैं आपकी ओर से या आप से यह नहीं कहना चाहता कि आप क्या निर्णय लें। यह मेरा काम नहीं है। आपका महान देश है और आपको ही निर्णय लेना है। लेकिन मेरा आपसे आग्रह है कि हम इन मुद्दों पर आपसी बातचीत को जारी रखें और इस बातचीत को परमाणु प्रसार को रोकने के क्षेत्र में वास्तविक भागीदारी में बदलें। यदि हम अपने मतभेदों को कम कर सकें तो हम अधिक सुरक्षित होंगे और हमारे संबंध और अधिक मज़बूत होंगे।

मैं आशा करता हूं कि इस क्षेत्र में भारत और पाकिस्तान के बीच तनाव सहित सभी तनावों के कारणों को दूर करने के क्षेत्र में प्रगति की जा सकती है। पाकिस्तान के रवैए के संबंध में मैं आपकी सरकार की चिंताओं में, पिछले प्रयासों में मिली असफलता पर आपकी निराशा में, हाल की हिंसा पर आपके दुःख में आपके साथ हूं। मैं जानता हूं कि ऐसी स्थिति में लोकतांत्रिक मूल्यों को बनाए रखना कठिन होता है जब आपके चारों ओर ऐसे देश हों जिनकी सरकारें लोकतंत्र में विश्वास न रखती हों।

लेकिन मैं यह भी विश्वास करता हूं कि—बतौर लोकतंत्र, भारत के पास यह विशेष अवसर है कि वह अपने पड़ोसियों को यह दिखाए कि लोकतंत्र के मायने परस्पर बातचीत करना है इसका मतलब ऐसे लोगों के बीच मित्रता कायम करना नहीं जिनमें मतभेद हैं बल्कि उनके बीच व्यावहारिक संबंध बनाए रखना है।

आज तक किसी ने मुझे जो सबसे ज्यादा समझदारी की बात कही है वह यह कि आप अपने दोस्तों के साथ शांति की अपेक्षा नहीं करते। यह बात मुझसे इज़राइल के पूर्व प्रधानमंत्री यित्जक राबिन ने फिलिस्तीनियों के साथ ओसलो समझौता करने से पहले कही थी, जिनके साथ वे कई दशकों से लड़ रहे थे। इसे याद रखना अच्छी बात है—मैं इसे हमेशा

याद रखता हूं, तब भी जब मैं अपनी कांग्रेस में अन्य दलों के सदस्यों से बहस कर रहा होता हूं...(हंसी)...आपको अपने मित्रों के साथ शांति नहीं रखनी होती है।

विरोधियों से विचार-विमर्श करने का अभिप्राय उनकी बात मान लेना नहीं है। इसके लिए आपको अपनी जायज़ शिकायतों को नहीं छोड़ देना चाहिए। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि आपके प्रधानमंत्री द्वारा की गई लाहौर की यात्रा के बाद जो कुछ घटित हुआ उससे बातचीत करने की ज़रूरत और अधिक बलवती हुई है। (तालियां)

मुझे इस समस्या के स्थायी समाधान के लिए कोई अन्य उपाय नहीं सूझता। अंत में, निर्दोष लोगों की ख़ातिर जिन्हें सबसे अधिक कष्ट झेलने पड़ते हैं, कोई न कोई उत्पीड़न और आक्रमण की इस प्रतिद्वन्द्विता को अवश्य समाप्त करेगा।

मैं यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि, जैसा कि मैंने बार–बार कहा भी है कि मैं निश्चित तौर पर, दक्षिण एशिया में कश्मीर पर मध्यस्थता करने नहीं आया हूं। अपनी समस्याओं के लिए भारत और पाकिस्तान को ही मिलकर हल ढूंढ़ना है। मैं यही बात इस्लामाबाद में जनरल मुशर्रफ से भी कहूंगा। परंतु यदि बाहरी देश इस समस्या का समाधान नहीं कर सकते हैं तो मैं आशा करता हूं कि आप यथासंभव दूसरों की सहायता लेते हुए स्वयं समाधान करने का अवसर पैदा करेंगे, जैसा कि अमरीका ने किया था जब उसने कारगिल युद्ध के दौरान पाकिस्तान से नियंत्रण रेखा से पीछे जाने के लिए कहा था। (तालियां)

साथ ही मैं इस बात पर भी ज़ोर दूंगा कि यह समय संयम बरतने, नियंत्रण–रेखा का सम्मान करने और संप्रेषण की नई रूपरेखा पर विचार करने का है।

इस चुनौती तथा अन्य सभी चुनौतियों के लिए जिनके बारे में मैंने चर्चा की है, यह आवश्यक है कि हम घनिष्ठ तथा अच्छे मित्र बनें तथा इस बात को ध्यान में रखें कि अच्छे मित्र आदरवश एक–दूसरे के प्रति वफादार होते हैं और जब वे किसी पहलू पर सहमत नहीं भी होते तो भी वे सदैव एक समान हल खोजने का प्रयास करते हैं।

मैंने पढ़ा है कि भारतीय शास्त्रीय संगीत की एक खास विशेषता है उसका लचीलापन। संगीतकार आधार के रूप में लय और ताल बनाता है, लेकिन वादक उसी में से समरसता प्रदान करते हुए उसे जीवंत रूप प्रदान करता है।

हमारा संबंध भी इसी प्रकार का है। हमारे पूर्व–निर्माताओं ने हमारे लिए एक सम्मिलित लोकतांत्रिक आदर्शों की आधारशिला रखी थी। अब उन आदर्शों को मूर्त रूप प्रदान करना हमारा काम है। यह ज़रूरी नहीं है कि यह लयबद्धता हम दोनों के लिए उतनी ही सुंदर और मोहक हो। लेकिन यदि हम परस्पर विचारों का आदान–प्रदान करें और अपने इन सपनों को साकार करने का मिलकर प्रयास करें तो हम अपना–अपना राग अलापने की

1368 HA/2000 2B

बजाय कहीं सुंदर स्वरसंगति कर पाएंगे।

इसकी कुन्जी है कि हम एक–दूसरे की बात सम्मानपूर्वक तथा ध्यान से सुनें। यदि हम ऐसा करते हैं तो अमरीकावासी भारत की उपलब्धियों तथा संसार के इस अशांत हिस्से में भारत के सामने आने वाले खतरों को भलीभांति समझ सकेंगें। हम यह भली–भांति समझते हैं कि भारत किसी विशेष मार्ग का चयन केवल इसलिए नहीं करेगा कि अन्य देश उससे ऐसा चाहते हैं। वह केवल उसी मार्ग का चयन करेगा जिस पर उसे विश्वास है, जिसमें उसके हित स्पष्ट रूप से जुड़े हैं तथा जिसे इसके लोग लोकतांत्रिक रूप से स्वीकार करेंगे।

यदि हम एक–दूसरे की बातों पर ध्यान दें तो मुझे यह भी विश्वास है कि भारतवासी यह बात भलीभांति समझ पाएंगे कि अमरीका हृदय से आपकी प्रगति चाहता है।...(तालियां) ...राष्ट्रपति के पद पर रहते हुए मेरे कार्यकाल में समय–समय पर अमरीका को यह आभास हुआ कि यह बड़े–बड़े राष्ट्रों की कमज़ोरी है न कि उनकी ताकत जो उनके भावी सपनों के लिए ख़तरा है।

अतः हम चाहते हैं कि भारत मज़बूत बने; सुरक्षित रहे; संगठित रहे तथा अधिक सुरक्षित समृद्ध, लोकतांत्रिक विश्व की एक बड़ी ताकत बने। जो कुछ भी मैं आपसे कह रहा हूँ वह उसी भावना से कह रहा हूँ। एक बहुत लम्बे अलगाव के बाद भारत और संयुक्त राज्य अमरीका ने यह अनुभव किया है कि सहज मित्र–राष्ट्र बनना दोनों के लिए महत्वपूर्ण है, लेकिन यही पर्याप्त नहीं है। हमारा काम इन साझे सपनों को साझी उपलब्धियों में बदलना है ताकि हम भावना से ही नहीं बल्कि सच्चे अर्थों में भी सहभागी हों।

काफी प्रयास के बाद हम इस नई शुरुआत तक पहुंचे हैं लेकिन अभी भी हमें वायदे पूरे करने हैं, चुनौतियों का सामना करना है तथा आशाओं को फलीभूत करना है।

आइए, हम काल मानव की शक्ति में पूर्ण विश्वास रखते हुए जीवन की क्षण–भंगुरता तथा क्षणिक प्रवृत्ति के इस क्षण के महत्त्व को समझें। आइए, हम भारत, अमरीका तथा उन देशों के साथ जो हमारे साथ इस भूमंडल के निवासी हैं, तथा उन बच्चों के लिए, जिन्हें हम संयुक्त रूप से उज्ज्वल भविष्य दे सकते हैं, इस क्षण को महत्त्वपूर्ण बनाएं।

बहुत–बहुत धन्यवाद। (तालियां)

(अनूदित)

हिंदी, भारत मां के माथे की बिंदी

जगदम्बी प्रसाद यादव

भारत के सन्तों ने भारत में घूम-घूमकर इस छोर से उस तक हिंदी में अपना प्रवचन दिया, रामेश्वर से ब्रदीधाम तक मजे में तीर्थ यात्री जो भारतभर से आते हैं, वे अपना काम हिंदी में चला लेते हैं। स्वतंत्रता के संघर्ष में हिंदी ने अपनी अहम भूमिका निभाई। मूर्द्धन्य नेतागणों ने भारत के लिए एक राष्ट्रभाषा चलाने की बात सोची। इसके लिए हिंदी को सबसे उपयुक्त और व्यावहारिक माना। साथ ही हिंदी को सबसे सरल, सहज एवं बोधगम्य भी पाया गया। सर्वप्रथम दयानन्द सरस्वती ने आर्य धर्म का प्रचार हिंदी में कर हिंदी को देशव्यापी बनाया। यद्यपि वह संस्कृत के विद्वान थे, तथापि उन्होंने स्कूल और कालेज हिंदी माध्यम के खोले। अपनी पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' लिखी। अंग्रेज जिससे घबराया और इस पर प्रतिबन्ध भी लगाया।

माननीय गांधी जी ने हिंदी भाषा के विधिवत देशव्यापी प्रचार-प्रसार की व्यवस्था की जो आज भी चल रही है। देश स्वतंत्र हुआ तो हिंदी को भारत की राजभाषा घोषित किया गया। हिंदी को जहां सन्तों-साधुओं ने वरदान दिया, वहीं भारतीय विद्वानों ने इसे सराहा और इसका प्रचार-प्रसार करने की आवश्यकता का अनुभव किया। सबसे आश्चर्य और महत्व की बात यह है कि हिंदी को राष्ट्रभाषा का पद देने और उसे प्रबल बनाने का कार्य हिंदी के विद्वानों ने किया। हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य जहां बंगाल के विद्वानों ने करना आरम्भ किया वहीं महात्मा गांधी व इनसे भी पहले स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने वही कार्य किया। राजगोपालाचारी ने महात्मा गांधी जी का हिंदी के प्रचार में साथ दिया। आज भी हिंदी को जिस लगन से तमिलनाडु के नवयुवक पढ़ और सीख रहे हैं, ऐसा लगता है कि वे आने वाले समय में हिंदी को वास्तविक राजभाषा बनाने में ऐतिहासिक भूमिका निभाएंगे। हिंदी की सभी विधाओं के शब्द भण्डार का निर्माण सरकार ने कराया। आज हिंदी अपना आधुनिकीकरण करने में सक्षम है। आवश्यकता है, इसको ईमानदारी से अंजाम देने की।

सरकारी क्षेत्रों में हिंदी का ढांचा इतना अच्छा बना हुआ है कि उनका कार्यान्वयन वास्तव में किया जाता तो भारत का कब का अंग्रेजी से पिण्ड छूट जाता। राजभाषा समिति बनी हुई है। अनेक महत्वपूर्ण प्रतिवेदन राष्ट्रपति को दिए गए हैं और उस पर राष्ट्रपति ने भी हस्ताक्षर कर दिए हैं। आवश्यकता है, इसके पालन और कार्यान्वयन की। देश में हिंदी के विकास के लिए एक केंद्रीय हिंदी समिति है जिसका अध्यक्ष प्रधानमंत्री होता है। पर इसका पुनर्गठन और बैठक नहीं हो रही है। सभी मंत्रालयों के लिए हिंदी सलाहकार समितियों की व्यवस्था है। सभी स्तर के कार्यालयों में हिंदी राजभाषा कार्यान्वयन समितियां बनी हुई हैं जो हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए हैं। हिंदी आदिकाल से सरकार की मदद की बिना

कामना किए, अपनी आन्तरिक ऊर्जा से अपनी सरलता, सहजता, बोधगम्यता और समन्वय की भावना से निरन्तर आगे बढ़ती, प्रगति करती रही है। चलचित्र इसके प्रचार-प्रसार में बिन कहे भूमिका निभा रहा है। अब तो वह देश के बाहर भी इस काम को अंजाम देने में समर्थ है। वर्षों से हिंदी का देश से बाहर प्रचार-प्रसार ही नहीं हुआ बल्कि अनेक देशों ने अपने यहां विश्व हिंदी सम्मेलन करके हिंदी के महत्व को प्रमाणित किया है। गत वर्ष अंग्रेजी के जन्मस्थान इंग्लैण्ड के लन्दन शहर में विश्व हिंदी सम्मेलन हुआ और वहां भी हिंदी की धाक जमी। दुनिया जानती है कि भारत इण्डिया बना हुआ है। उसकी वास्तविक राज-काज की भाषा अंग्रेजी बनी हुई है। हालांकि, अनेक देशों के सैंकड़ों विश्वविद्यालयों में हिंदी की पढ़ाई होती है, शोध कार्य होते हैं तथा दर्जनों देश दूरदर्शन पर हिंदी में समाचार और कार्यक्रम प्रसारित करते हैं। इस तरह हिंदी राष्ट्रसंघ की वैकल्पिक भाषा बनने की अधिकारिणी है। आवश्यकता है वहां भारत के प्रतिनिधि हिंदी में बोलना आरम्भ करें।

संकट है, अंग्रेजी की मानसिकता का। निष्ठा की कमी है, विशेषकर सरकारी सेवा में अधिकारीगणों की। वे स्वयं अंग्रेजी में व्यवहार करने को छोड़ नहीं पाते हैं। वे चाहते हैं कि राजनेता तय कर दें कि अब सबको हिंदी में काम करना है तो आज ही नहीं तो कल से हिंदी में काम करना प्रारम्भ कर दें। स्वतंत्रता का पूरा लाभ बड़े पूंजीपति, बड़े नेता और सरकार के उच्च पदस्थ अधिकारियों ने उठाया है तथा सत्ता, साधन एवं अर्थव्यवस्था पर वर्चस्व स्थापित कर लिया है। वहीं वृहत्तर जनता रोजी-रोटी के मामले में भी पीछे हटती गई है। नेतागण भाषण में तथा विकास में जनता को सरकार में भागीदारी देने की बात करते हैं पर जब तक राजकाज की भाषा अंग्रेजी रहेगी तब तक उनको भागीदारी नहीं मिलेगी। अंग्रेजी समाज को दो भागों में बांटती है। एक छोटा सा वर्ग लंदन की जिन्दगी जीता है और शेष भाग झुग्गी-झोंपड़ी में अभावग्रस्त जिन्दगी जीने के लिए बाध्य है। यह हिंदी की ही समस्या नहीं है यह भारत की भी समस्या है। ऐसा नहीं हो कि वह छोटा समाज, समाज से ही कट जाए।

अंग्रेजी भारत की संस्कृति को विभाजित करती है, भारतीय अस्मिता को धूमिल करती है तथा भारतीयों में अपनी ही भाषा के प्रति हीन भावना भरती है। यह देश व समाज के लिए अभिशाप बनती जा रही है। सबसे भयंकर स्थिति है शिक्षा के सभी स्तरों पर अंग्रेजों का माध्यम बन जाना। आज रोजी-रोटी की भाषा अंग्रेजी हो गई है—क्यों कोई भारतीय भाषा पढ़े? अब तो शिक्षा, दीक्षा, परीक्षा, नौकरी, व्यवसाय, प्रोन्नति की एकमात्र भाषा भारत में अंग्रेजी बन गई है। भारतीय भाषा पढ़कर तों लड़के-लड़कियों का भविष्य ही अन्धकारमय होने की स्थिति बन गई है। इतना ही नहीं आज तो भारत सरकार हिंदी के परीक्षण, कार्यशालाएं, आदि पर जो जन-धन-समय खर्च कर रही है, वह बेकार जा रहा है। कारण, उनका उपयोग नहीं हो रहा है। अब सरकारी अधिकारियों, कर्मचारियों में प्रशिक्षितों का अभाव नहीं है बल्कि उनको हिंदी में काम करने का अवसर ही नहीं दिया जा रहा है। अब तो कम्प्यूटर आदि का युग आ गया है। बिना इसके तो भाषा ही मर जाएगी। एक दर्जन यंत्र ही द्विभाषी बना दिए गए हैं पर इनका प्रयोग कौन, क्यों, कहां, कैसे और किसके लिए करेगा जबकि भारत

सरकार की सभी संचिकाएं मात्र रोमन, अंग्रेजी में लिखी जाती हैं? आज हिंदी टंकक, आशुलिपिक बेकार रहते हैं क्योंकि बड़े अधिकारी हिंदी में नोट या टिप्पणी आदि कराते ही नहीं हैं। हिंदी तो वहां अनुवाद की भाषा मात्र बनकर रह गई है।

राजभाषा हिंदी का स्वर्ण जयन्ती वर्ष चल रहा है। सोचा था कि यह वर्ष अंग्रेजी की मानसिकता से अपना पिण्ड छुड़ाएगा, हिंदी के प्रति निष्ठा जागेगी। पर हालत देखकर लगता है कि यह वर्ष ठीक 14 सितम्बर को मनाए जाने वाले 'हिंदी दिवस' के समान मात्र खानापूर्ति बनकर रह जाएगा। समय अब भी है कि सरकार और सरकार के बड़े अधिकारी चलें और राजभाषा के प्रति निष्ठावान हों और स्वतंत्र देश स्वाभिमान के साथ स्वतंत्र भाषा राजभाषा हिंदी को अपनाने का संकल्प ले। यह बात सिद्ध है कि नेता हो या पूंजीपति, धर्म प्रचारक हों या वोट मांगने वाले, उद्योगपति हों या उच्चाधिकारी, जब उन्हें जनसम्पर्क करना होता है तो उन्हें हिंदी या भारतीय भाषा अपनानी पड़ती है। उदारीकरण तथा विश्व के छोटा होते जाने के कारण देश शीघ्र अपनी भाषा में काम करना प्रारम्भ करे अन्यथा दुनिया के साथ कदम से कदम मिलाकर चलना कठिन होगा। देश की जनता को साथ लेकर चलने से ही देश उन्नत, स्वाभिमानी व स्वावलम्बी बन सकेगा। स्वर्ण जयन्ती के समय में देश के प्रधानमंत्री हिंदी के प्रवक्ता, ओजस्वी वक्ता, राष्ट्रसंघ में हिंदी को गुंजाने वाले श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी हैं तथा संसदीय राजभाषा समिति के अध्यक्ष गृहमंत्री कुशल और अनुभवी तथा दृढ़ता के प्रतीक श्री लालकृष्ण आडवाणी जी हैं। सोने में सुहागा का सा अवसर है। भारत को सांस्कृतिक, स्वावलम्बी तथा सम्पन्न और शक्तिशाली राष्ट्र बनाना है। यह पुनीत कार्य हिंदी के माध्यम से ही सम्पन्न हो सकता है।

मुझे विश्वास है कि सरकार, स्वर्ण जयन्ती वर्ष में, राजभाषा हिंदी का कल्याण करने के प्रति सक्षम कदम उठाएगी और नौकरशाह उचित मार्गदर्शन में काम करेंगे। भारत से गरीबी बेकारी दूर करने का यही रास्ता है। इसी के माध्यम से जनकल्याण की सभी योजनाएं पूरी हो सकेंगी। हिंदी भारत की आत्मा की भाषा है और यही देश के विकास की आवाज भी है।

संसद सदस्य (लोकसभा) 4, डा. विशम्भर दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

शिक्षा उन विचारों की अनुभूति कर लेने का नाम है जो जीवन निर्माण, मनुष्य तथा चरित्र निर्माण में सहायक हो।

—स्वामी विवेकानन्द

अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में हिंदी

—राजेन्द्र अवस्थी

किसी भी भाषा के संबंध उस देश की सामाजिकता और सांस्कृति विरासत से संबद्ध रहता है। हिंदी अपने इन्हीं परिवेशों के कारण अब केवल भारत की ही नहीं बल्कि एक विश्व भाषा के रूप में अच्छी तरह जानी और पहचानी जाती है। इसका तीसरा स्थान है। यहां तक पहुंचने में हिंदी के साहित्यकारों और लेखकों ने उतना योगदान नहीं दिया जितना योगदान यहां से जाने वाले मजदूरों और उनके साथ जाती हुई समूची ग्रामीण संस्कृति ने दिया है। यह सर्वविदित है कि दुनिया के छोटे छोटे देशों में रोजी-रोटी की तलाश में भारतीय पहुंचे तो उन्हें न जाने कितनी यातनाओं का सामाना करना पड़ा। उनसे इतना काम लिया जाता था कि मनुष्यता की सभी सीमाएं टूट गई थीं। लेकिन वे तब भी उन संघर्षों को स्वीकारते रहे और अंततः अनेक देशों में न केवल उन्होंने अपनी गहरी छाप लगा दी बल्कि अब तो कुछ देशों के राष्ट्राध्यक्ष भी उसी संतान के प्रतिनिधि हैं। जो लोग भारत से बाहर गए वे अपने साथ अपनी बोलियां साथ ले गए। चाहे वे भोजपुरी बोलते रहे हों, अवधी बोलते रहे हों, बुंदेलखंडी अथवा और मिलीजुली बोलियां, संगठित होने के लिए सारी बोलियों को अपना एक विशिष्ट रूप उन्हें देना पड़ा। यह स्वरूप देने में किसी श्रम की आवश्यकता उन्हें नहीं पड़ी। सवाल यह है कि जब कोई भी प्रश्न रोजी-रोटी और अपनी अस्मिता के साथ जुड़ जाता है तो इन सबको मिलाने के लिए एक नया आयाम अपने आप बन जाता है। बहु बोलियों वाले इन भारतवंशियों को विदेशों में हिंदी को एक स्वरूप देने में न तो बहुत समय लगा और न ही संघर्ष करना पड़ा। इन्हीं बोलियों ने उनके दुःख दर्द को आपस में बांटा और जीने की प्राणवान चेतना दी। तब इनसे एक विशेष भाषा बनी और वह भाषा हिंदी ही है, भले उसे आज के साहित्यिक स्तर पर सामने रखने में कठिनाई हो। वैसे ही समानान्तर सच यह है कि पहले बोलियां होती हैं। धीरे-धीरे यही बोलियां न जाने कितने प्रकारों में बदलती रहती हैं और अंततः एक भाषा का रूप ले लेती हैं और आगे जाकर व्याकरण बनता है और शब्द कोश भी। इसलिए, इसे स्वीकारना होगा कि बोली साहित्य की मूल चेतना है। यही चेतना आगे बढ़कर एक प्रामाणिक रूप लेकर अपनी मूल चेतना से बनती है और उसके साथ मिलकर एक हो जाती है। हिंदी के अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप को समझने के लिए इस प्रक्रिया को समझना बहुत जरूरी है।

हिंदी दुनिया की सबसे सरल भाषा है। उसका मुख्य कारण यह है कि वह जैसी बोली जाती है वैसी ही लिखी जाती है। दुनिया की महान कहलाने वाली अंग्रेजी, फ्रांसीसी, जर्मनी और रूसी भाषाओं में यह महानता नहीं है। जिस अंग्रेजी ने हमारे देश में कब्जा जमाकर रखा है वह नितांत अवैज्ञानिक भाषा है—बोलते कुछ हैं लिखते कुछ हैं। इतना ही नहीं साम्राज्यवादी प्रसार के कारण अंग्रेजी न तो अमेरिका में अपने रूप में रह सकी और न ही दुनिया के अन्य देशों में। यह विशेषता केवल हिंदी में है कि जहां जहां वह फैली है

उसमें एकरूपता है। इस संदर्भ में यह मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि हिंदी में स्वर और व्यंजन में मनमाने प्रयोग होते हैं। एक दुःखद प्रसंग यह भी है कि जो वास्तविक हिंदी संस्कृत से निकली है उसने न जाने कब, कैसे और किस आधार पर संस्कृत की मूल इकाई 'लिंग' को बदल दिया है। हिंदी में केवल स्त्रीलिंग और पुलिंग हैं, तीसरा लिंग है ही नहीं। इससे कठिनाई यह होती है कि हिंदी का बड़े से बड़ा विद्वान पंडित भी लिंग के प्रयोगों में गलती करता है। उदाहरण के लिए टेबल जैसी निर्जीव वस्तु पुलिंग भी है और स्त्रीलिंग भी—टेबल अच्छा है और मेज अच्छी है। मैं तीसरे लिंग की अनुपस्थिति को बहुत बड़ा दुर्भाग्य मानता हूं और हमेशा यह वकालत करता रहा हूं कि यदि वास्तव में हिंदी को निर्दोष बनाना है तो उसमें 'न्यूट्रल जेंडर' यानी 'नपुंसक लिंग' को भी जोड़ना होगा। यह कहा जा सकता है कि यह सब सोचने में बहुत देर हो गई। लेकिन सच्चाई तो यह है कि जैसे-जैसे हिंदी का विस्तार होता जाएगा और वह वास्तव में विश्व भाषा का रूप लेगी, हमारी आज की यह छोटी सी कठिनाई बहुत भयंकर साबित होगी। मेरा आग्रह है कि हिंदी के पंडितों को सारे मतभेद भुलाकर इस तरह के प्रश्नों और इसी के साथ जुड़े कुछ और प्रश्नों को अभी हल कर लेने में एकता का परिचय देना चाहिए। होता यह है कि समालोचक या आलोचक नाम का प्राणि न केवल भाषा के साथ खिलवाड़ करता है बल्कि वह व्यक्ति और व्यक्ति की अभिव्यक्ति को भी धोखा देता है। यह बात सब जाने हैं कि भाषा वही बड़ी बनती है जिसमें अधिक मौलिक चिंतन होता है। चिंतनशील व्यक्ति जब सृजन की टेबल पर बैठता है तो न तो वह व्याकरण देखता है और न ही यह सोचता समझता है कि जो कुछ वह लिख रहा है वह है भी या नहीं। है तो ठीक है और यदि नहीं है तो हो जाएगा क्योंकि भाषा का निर्माणकर्ता और उसे स्वरूप देने वाला व्यक्ति निर्बन्ध होता है। मैंने स्वयं कई बार इस बात का अनुभव किया है। मेरे पाठक जानते हैं कि मैं 'कालचिंतन' लिखता हूं। जब मैं लिखने बैठता हूं तो मेरे सामने किसी और का आधिपत्य नहीं होता। न जाने कितने शब्द हैं जो अचानक बन जाते हैं। मुझे विश्वास है कि इस तरह अचानक बने हुए शब्द कालांतर में भाषा के एक स्वरूप के रूप में स्वीकार किए जाएंगे। यह सुविधा बोलियों को भी प्राप्त है। बोलियों में प्रचलित बहुत से शब्द अब हिंदी भाषा के एक अंग बन गए हैं। इंगलैण्ड जैसे प्रगतिशील देशों में भी भाषा के महत्व को समझा गया है। ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में प्रतिवर्ष पचास से लेकर सौ डेढ़ सौ हिंदी के शब्द इस तरह लिए जा रहे हैं कि उनका प्रयोग अब धड़ल्ले से अंग्रेजी में हो रहा है। यदि इस पर हमें गर्व होता है तो इस पर भी विचार होना चाहिए कि हम अपने आप में वह मानसिकता पैदा करें कि दूसरी भाषाओं के लोकप्रिय शब्दों को हिंदी शब्दकोश में समाहित करें।

बहरहाल, जब हिंदी की चर्चा चली है तो आत्म दर्शन करने का अवसर मिल ही जाता है और उसी दृष्टि से मैंने इन प्रश्नों को उठाया है। अब हिंदी को यदि अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप में देखें तो जितना विकास हमारे देश में नहीं हुआ उससे अधिक विकास दुनियाभर में हिंदी का हुआ है। इस विकास के तरीके अलग हो सकते हैं। यह भी हो सकता है कि हमारे फिल्मजगत ने भी इसमें योगदान दिया हो। लेकिन यह दुःख के साथ स्वीकारना पड़ता है कि हिंदी को धीरे-धीरे स्वरूप आक्रमणकारियों के हाथों मिला है। उदाहरण के लिए बाबर जब भारत में आया था तब उसके पहले वास्कोडिगामा आ चुका था। तब पुर्तगाली और उर्दू

के बीच समन्वय जोड़ने की बात थी। भारत चूंकि दोनों के लिए उपनिवेश था, उन्हें इस आक्रामक स्थिति के साथ हिंदी को बिना हिचक अपना लिया। हुआ यह कि पुर्तगाली भाषा के शब्द उर्दू और हिंदी में भी शामिल हो गए। उनमें से कुछ शब्द हैं : पादरी, गिरजा, मोजा, आलमारी, बाल्टी, चाबी, अचार, तौलिया इत्यादि। ये सैकड़ों की संख्या में बहुत आसानी से दूध में पानी की तरह मिल गए। आगे चलकर जब फ्रांस के लोग यहां आए तो उन्होंने अपने को स्थापित करने के लिए भारतीय भाषा के साथ अपना संबंध पहले स्थापित किया। फ्रांसीसी लेखक वाल्तेयर ने 'फेगमेंट ऑफ इंडिया' नाम की अपनी पुस्तक में इस बात का बहुत सफाई के साथ उल्लेख किया है। समय बदलता रहा, और इसी के साथ-साथ विदेशियों ने हिंदी को अपने ढंग से स्वीकारने में कमी नहीं की। कहा जाता है कि वारन हेसटिंग्स पहली बार जब भारत आए थे तो उन्हें 'राइटर' बनाकर भेजा गया था। कलकत्ता, बनारस और कुछ अन्य शहरों के विश्वविद्यालयों में उन्हें काम करना पड़ा था। इस प्रसंग में उन्हें अपनी भाषा में भी परिवर्तन करने पड़े और नए प्रयोग शुरू हुए। इस प्रसंग में मैं हैरासिम लैबडैफ के नाम का उल्लेख जरूर करना चाहूंगा। उन्होंने 'ग्रामर ऑफ द प्योर एंड मिक्स्ड ईस्ट इंडियन डाइलेक्ट्स' नामक पुस्तक प्रकाशित की। इस पुस्तक में न जाने कितने प्रयोग किए गए। यहां तक कि शेक्सपियर को सही अर्थों में समझाने के लिए हिंदी में कई नए शब्द भी बनाए गए। सन 1827 के आसपास 'हिंदी भाषा का व्याकरण' नाम से एक पुस्तक कलकत्ता में प्रकाशित हुई थी। उसके बाद छात्रों के लिए बनारस से सन् 1870 में दूसरी एक पुस्तक छपी उसमें हिंदी की खड़ी बोली के साथ-साथ अवधी, भोजपुरी, मैथिली, मघई, कन्नौजी और नेपाली तर्क के कई शब्द लिए गए। न जाने कितने पारिभाषिक शब्द संस्कृत से हिंदी में लाए गए क्योंकि संस्कृत की समृद्धता ऐसी है कि उसमें उदारता पूर्वक दान करने की क्षमता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि भारत जैसे महान सांस्कृति देश को समझने के लिए दुनिया के किसी देश के विद्वान ने अथक परिश्रम न किया हो ऐसा नहीं हुआ। चार्ल्स विलकिन्स ने संस्कृत में व्याकरण लिखा और भगवद् गीता का अंग्रेजी में अनुवाद किया। फ्रांस के कई लेखकों ने हितोपदेश, गीत गोविन्द शकुन्तला और महाभारत अपने देश में उपलब्ध करवाए। यहां तक कि भारतीय दर्शन, ज्योतिष, धर्म और गणित को भी नहीं नकारा गया और यूरोपीय विद्वानों ने उनके अनुवाद कर भारतीय सांस्कृतिक दर्शन की वास्तविकता को समझने की कोशिश की। ग्रीयर्सन ने जो महान कार्य किया उससे शायद ही कोई अपरिचित हो। उन्होंने अपना सारा जीवन हिंदी के लिए समर्पित कर दिया और कोई क्षेत्र ऐसा नहीं छोड़ा जिसमें शोध न किया हो और अनुवाद न किया हो। इसी प्रसंग में रूस के विद्वान वारान्निकोव का नाम मैं जरूर लेना चाहूंगा जिन्होंने पूरी तरह समझ लिया कि हिंदुस्तान को यदि देखना है और वहां के जनमानस के साथ एकरस होना है तो रामचरितमानस की उपेक्षा नहीं की जा सकती। उन्होंने पूरे रामचरितमानस का रूसी भाषा में अनुवाद किया। रूस जैसे बड़े देश ने तब पहली बार समझा होगा कि अपनी अपार साहित्यिक सम्पदा के बावजूद साहित्य और जनचेतना का संबंध क्या होता है यह केवल भारत जैसा देश ही बता सकता है। यदि मैं नाम लेने लगूं तो दुनिया का कोई देश नहीं बचेगा जहां के अध्येयताओं ने बिना किसी सरकारी मदद के भारत को विश्व के वातायन में फैलाकर नहीं रखा। यह काम करने में उन्होंने गौरव महसूस किया। यदि हम अपने आप से पूछें कि आखिर ऐसा क्या था कि वे हमारे देश के

लिए इतना कुछ कर गए, मेरा अनुमान है कि इसे समझने के लिए हमें केवल अपनी अंतः दृष्टि को देखना होगा और उसे पहचाना होगा। हमारा समूचा व्यक्तित्व उस महान सांस्कृतिक भाषा के बीच पनपा है जिसे पाने का सौभाग्य कम देशों और कम लोगों को मिलता है।

आज की दुनिया एकदम अलग है। ऐसा कुछ हो गया है कि कोई देश किसी दूसरे देश पर अपना आधिपत्य जमा सके यह संभव नहीं है। रूस जैसा महान देश भी आखिर टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो गया। जो इतिहास जानते हैं उन्हें पता है कि स्कैंडिनेवियन और यूरोपीय देशों ने किस तरह और किस संघर्ष के बाद अपने को अलग किया और अपनी पहचान खुद बना ली। यही कुछ अफ्रीका में भी हुआ। इस प्रक्रिया में टूटते हुए देश, चाहे भारत के एक जिले के बराबर ही हों, लेकिन उन्होंने अपनी आत्मा, अपने दर्शन और अपनी भाषा को सबसे अधिक प्रमुखता दी। अब तो स्थिति यह है कि छोटे-बड़े झगड़े भले ही हों, हर राष्ट्र की अपनी जनचेतना अलग रहेगी, इसमें संदेह नहीं है। मैं पहले बता चुका हूं कि जनचेतना का प्रबल माध्यम संस्कृति और साहित्य होता है। भारत ने पिछले कुछ वर्षों में ही यह पहचान कर ली है कि उसकी महान भाषायी क्षमता को कोई भी देश कम करके नहीं आंक सकता। इस प्रसंग में विश्व हिंदी सम्मेलनों ने बहुत बड़ी भूमिका निभाई है। अब तक छह विश्व हिंदी सम्मेलन हुए हैं लेकिन इनके माध्यम से हर देश का विद्वान जुड़ गया है। यह बात विश्वभर में प्रचारित हो चुकी है कि अनेक भाषाओं के होते हुए भी भारत में कोई एक भाषा तो है जो समूचे देश का चेहरा है और वह है हिंदी। इन सम्मेलनों से यह भी समझने में सहायता मिली है कि यदि हिंदी विश्व की तीसरी भाषा है तो अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। विरोधियों की संख्या अभी भी कम नहीं है लेकिन यह विरोध किसी शत्रु भाव से नहीं है बल्कि भाषा और भाषा के साथ उभरने वाली सांस्कृतिक चेतना से है। सम्पन्न और शक्तिशाली राष्ट्रों को न चाहते हुए भी धीरे-धीरे बाध्य होना पड़ेगा कि यदि विश्व समुदाय का कोई एक संगठन है और उसमें कुछ भाषाओं का अपना स्थान है तो हिंदी जैसी विशाल भाषा को रोक सकना उनके लिए बहुत दिनों तक संभव नहीं होगा। एक दिन उन भाषाओं के साथ जब हिंदी वहां पहुंचेगी तो आकार में छोटे देश और उन देशों की भाषाएं लड़खड़ाती नजर आएंगी और इसी से हिंदी को आसानी से आगे पहुंचने का रास्ता अपने आप मिल जाएगा। हम हिंदी के लिए संघर्ष कर रहे हैं, यह सत्य है। हमारी संघर्ष चेतना बलवती बनी रहेगी यह भी सत्य है। सत्य यह भी है कि इस भाषायी चेतना का संबंध आने-जाने वाली राजनैतिक सत्ता से नहीं है। उसका अपना क्षेत्र है और उस क्षेत्र में जहां जो होना होगा वह होता रहेगा लेकिन हिंदी इन सबके बीच में आगे निकल कर अपना स्थान अपने आप पा लेगी। हिंदी का विकास जनचेतना के आधार पर हुआ है और हो रहा है। जनचेतना के सामने राजनीति कोई अर्थ नहीं रखती। वैस भी राजनीति मात्र एक क्रिया प्रणाली है, जनचेतना जीवनशैली है। जीवनशैली हमेशा सम्पन्न और शक्तिशाली रही है, इस तथ्य को समझते हुए हमें हिंदी के अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप को समझना होगा। यह स्वरूप वह होगा जो हमारी भाषा का है, उस पर ऊपर से कुछ लादा नहीं जा सकता। ऐसी विशालता के लिए विकास के दरवाजे हमेशा खुले रहे हैं और वे खुले रहेंगे।

संपादक, 'कादम्बिनी' दि हिंदुस्तान टाइम्स लि., नई दिल्ली

नार्वे का साहित्यिक तीर्थ : व्योर्नसन का घर

हिमांशु जोशी

सीगरी उनसत की साधनास्थली बेयर बेक देख चुके हैं। सन् 1928 में उन्हें जिस कृति के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था, वह यहीं लिखी गई थी। अब से ठीक 63 वर्ष पूर्व वह ओस्ली छोड़ कर यहां आई थीं—शान्ति की खोज में।

सीगरी का सारा घर अब संग्रहालय में बदल गया है। सारी वस्तुएं उसी तरह रखी हैं, जैसे सीगरी के जीवन-काल में कभी रखी रहती होंगी।

घर से हम बाहर आते हैं। नार्वे की मीठे पानी की सबसे बड़ी झील म्योसा ठीक सामने दीख रही है। सूर्य की चमचमाती रोशनी में कांच के टुकड़ों पर पड़े प्रकाश की तरह झिलमिलाता जल!

ठीक पूर्व दिशा में लिली हामेर की विस्तृत, उदार उपत्यका है। यहीं पास ही कहीं, दूसरे विश्वयुद्ध के समय नाजी सैनिकों से संघर्ष करता हुआ, सीगरी का बड़ा बेटा ऐंडर्स शहीद हुआ था।

ढलान पर बना है मकान। हम नीचे उतर कर, पेड़ों की छाँह तले रखी बेंच पर बैठकर दोपहर का चबैना करने लगते हैं। चावला—दम्पति पूरियां बनाकर लाए हैं। आलू की चटपटी सब्जी है। नार्वे के सुदूर इस क्षेत्र में विशुद्ध भारतीय भोजन का अपना अलग ही स्वाद है। कंचे—जैसी पारदर्शी भूरी आँखों वाली एक सफेद बिल्ली सामने आकर बैठ गई है। टुकुर-टुकुर देख रही है।

आलू-पूरी मैं उसकी ओर बढ़ाता हूँ, तो वह स्वाद लेकर खाने लगती है। मैं सोचता हूँ—इस बिल्ली ने ऐसार भोज न पहले कभी किया होगा, न बाद में ही शायद कभी कर पाएगी! मैं थोड़ा-सा भोजन बड़े स्नेह के साथ उसे और खाने के लिए देता हूँ..

"यहीं पास ही तो है—व्योर्नसन का घर! यहां तक आए हैं तो कुछ कदम और आगे सही।' चावला कहते हैं।

भोज के पश्चात हम अगली यात्रा की तैयारी करने लगते हैं।

मैं उसी मार्ग की ओर देख रहा हूँ, जिससे होकर सीगरी उत्तरी ध्रुव प्रदेश की ओर

गई होगी—स्लेज गाड़ियों की सहायता से। ताकि वहां से सुरक्षित स्वीडन पहुँच सके। फिर वहाँ से अमेरिका।

सचमुच अमेरिका पहुंच कर इस नोबेल पुरस्कार से सम्मानित महिला ने, गुजारे के लिए टाइपिस्ट की जैसी कोई साधारण-सी नौकरी खोज ली थी और नाजियों के विरूद्ध अपने सतत संघर्ष को जारी रखा। वह तभी लिलि हामेर लौटी थी, जब हिटलर पराजित हो गया था।

गाड़ी पश्चिम दिशा की ओर बढ़ रही है। कैसा संयोग है कि दो नोबेल पुरस्कार प्राप्त साहित्यशिल्पी इतने पास-पास रहते थे! व्योर्नसन को भी 1903 में नोबेल-सम्मान मिला था।

नार्वे के राष्ट्रकवि हैं व्योर्नसन। यहां का राष्ट्रगान उन्होंने ही लिखा था।

इन विलक्षण प्रतिभा के धनी साहित्यकार का जन्म 1832 को हुआ था। जिस तरह रवीन्द्रनाथ ठाकुर अद्‌भुत प्रतिभा सम्पन्न थे, उसी तरह व्योर्नसन भी। वे एक चिन्तनशील कवि ही नहीं, सुविख्यात उपन्यासकर भी थे। उतने ही बड़े नाटकार। शिक्षा-शास्त्री। कलाकार। अभिनेता तथा सुपरिचित राजनीतिज्ञ भी।

इस समय उनके संग्रहालय यानी जिस घर की ओर हम बढ़ रहे हैं, उसका निर्माण 1800 में हुआ था। परंतु व्योर्नसन ने इटली से लौटने के पश्चात सन् 1870 में उसे खरीदा था।

हल्की-हल्की बूंदाबांदी-सी हो रही है।

एक तरफ सिर पर चमकती धूप, दूसरी तरफ बरसात की नन्हीं-नन्हीं बूंदें!

लगभग आधा घंटा से भी कम समय लगा होगा कि हम व्योर्नसन के घर के निकट पहुँच जाते हैं।

किंचित ऊंचाई पर है घर। हल्की सी चढ़ाई। सड़क के दोनों ओर बर्च के विशाल वृक्षों की कतार है। आसपास फूलों की क्यारियां हैं। फलों के वृक्ष हैं। हरियाली-ही-हरियाली! उनके बीच में खिले लाल, पीले, नीले फूल!

दो मकान साथ-साथ हैं। ढालान में एक बग्घी रखी है। एकदम नई लग रही है। जैसे अभी-अभी तैयार करके यहाँ लाई गई है!

'यह घोड़ा-गाड़ी व्योर्नसन की है। इस पर चढ़ कर वे इधर-उधर घूमने जाया करते थे। हमारे साथ चल रही 'गाइड' हमें हर वस्तु का इतिहास विस्तार से बतलाती जा रही है।

"व्योनर्सन को रंगमंच से बड़ा लगाव था। उनकी पत्नी स्वयं एक सुविख्यात अभिनेत्री थी। कहा जाता है कि व्योर्नसन कुछ रंगीले स्वभाव के थे। इसलिए पति-पत्नी दोनों ही एक दूसरे पर नजर रखते थे।" वह तनिक मुस्कराती हुई बतलाती है।

हम काठ के खुले बरामदे की परिक्रमा करते हुए, भीतर कमरे में प्रवेश करते हैं।

"व्योर्नसन ने चौबीस साल की उम्र में पहला उपन्यास लिखा था।" गाइड बतलाती है, "सामने जो यह सुनहरा फूलदान दीख रहा है न! यहाँ के राजा की ओर से वह व्योर्नसन की 'स्वर्ण-जयनती' के अवसर पर उपहार में दिया गया था।"

हर वस्तु को ध्यान से देखते हुए हम आगे बढ़ रहे हैं। हर वस्तु स्वयं में रहस्यपूर्ण लग रही है।

अब हम दूसरे कमरे में प्रवेश करते हैं।

"यह व्योर्नसन का 'डाइनिंग-रूम' था। यहाँ पर, इस कुर्सी पर बैठकर वे भोजन किया करते थे। उनकी बगल की यह कुर्सी सदैव उनकी पत्नी के लिए सुरक्षित रहती थीं..." गाइड रहस्यमय ढंग से मुस्कराती है।

हमें भी सहज ही जिज्ञासा होती है।

वह हमारे कान के पास मुंह लाकर फुसफुसाती है, "कान से उनकी पत्नी को कम सुनाई देता था।"

कुछ पलों का मौन तोड़ती हुई वह आगे बतलाती है, "कम लोग जानते हैं तथ्य कि नार्वे का यह सबसे पहला घर था, जहाँ बिजली लगी थी, पर व्योर्नसन के पास तब इतनी अधिक राशि थी नहीं। अतः उन्होंने लोगों से कुछ रकम उधार ली थी...।"

हम और दूसरे कमरे की ओर बढ़ने लगते हैं।

"यह दीवार-घड़ी दो सौ साल पुरानी है। व्योर्नसन के पिता ने एक ब्रिटिश-नाविक से खरीदी थी।"

हमें विस्मय होता है। टिक्-टिक् घड़ी आज भी उसी तरह टिक्-टिक् चल रही है!

"दुनिया के कम लोग जानते हैं कि व्योर्नसन और विश्वविद्यालय नाटककार हेनरिक इब्सन, दोनों समधी थी।"

"क्या मतलब?" हमारे सह यात्री जिज्ञासा से कहते हैं।

वह उसी स्वर में बतलाती है कि व्योर्नसन ने अपनी पुत्री बेरिंग लियोथ का विवाह हेनरिक इब्सन के बेटे सिग्गुर के साथ किया था...।

यह सुनकर मुझे आश्चर्य नहीं होता, क्योंकि तब भारत में नार्वे के राजदूत टंकेर्ड इबसन से मैं परिचित था। नार्वे आने से पहले मिला था। उनकी माता का नाम बेरिंग लियोथ तथा पिता का नाम सिग्गुर इब्सन था।

हम अब ऊपर की मंजिल की दिशा में बढ़ते हैं।

"यह व्योर्नसन का लिखने का कमरा है। यह मेज, जिस पर व्योर्नसन ने विश्वविख्यात रचनाएँ लिखी थीं। और यह रही उनकी विलक्षण टोपी, जिसे 'जादुई टोपी' भी कह सकते हैं।"

मेज पर पुस्तकों के पास एक गहरे नीले रंग की ऊनी टोपी रखी हुई है।

अपनी उसी रौ में वह कहती चली जा रही है, "इसे थिंकिंग-कैप के नाम से पुकारा जाता है। जब भी व्योर्नसन कुछ लिखते बैठते, वे यह टोपी धारण कर लेते थे। कहा जाता है कि इसे पहनने पर उनके मन में नए-नए विचार प्रस्फुटित होने लगते थे। उनकी कल्पना शक्ति और भी प्रखर हो उठती थी।"

मैं टोपी को छूकर देखने लगता हूँ।

वह टोपी उठाकर, मेरे सिर पर रख देती हैं, "क्या आपको भी व्योर्नसन की तरह नए-नए भाव उभरते-से प्रतीत हो रहे हैं?

मुझे कुछ भी प्रतीत नहीं हो पा रहा है। हाँ, गरम टोपी पहनने से कुछ-कुछ गर्मी का अहसास अवश्य मिल रहा है।

बड़ी श्रद्धा के साथ मैं उस टोपी को यथास्थान पर रख देता हूँ। मन-ही-मन उसे प्रणाम कर, दूसरे कक्ष की ओर बढ़ता हूँ।

सामने 'व्योर्नसन पर्वत' का विशाल चित्र है। एक पूरा पहाड़ काट कर, उस पर

व्योर्नसन की विशाल आकृति उकेरी गई है। है न मूर्तिशिल्पी का कमाल! इतनी बड़ी चट्टान को काटकर मूर्ति का आकार किस तरह देना सम्भव हुआ होगा! सच नहीं लग रहा है।

ठीक सामने 'नोबेल पुरस्कार' का मेडल रखा है।

गाइड उसे उठा कर हमें दिखाती है, "व्योर्नसन के अलावा, नार्वे में यह सम्मान सीगरी तक्का कुनुट हम्सन को भी मिला था।"

गाइड अब निचली मंजिल की ओर चलने का आग्रह करती है।

एक अद्‌भुत बड़ा गोल डेक रखा है ठीक सामने। गाइड हमें उसके पास खड़ा कर कहती है, "यह पचास लीटर का हैं। व्योर्नसन को बच्चों से बड़ा प्यार था न! प्रति वर्ष, देश के स्वाधीनता-दिवस को वे 'बाल-दिवस' के रूप में मनाते थे, बड़ी धूम-धाम के साथ। उत्साह के साथ। उस दिन इस डेक में भर कर चॉकलेट तैयार की जाती थी और फिर आस-पास के बच्चों को भर पेट खिलाई जाती थी।"

हमें फिर दूसरे कमरे में ले जाती है।

"यह कमरा तो एकदम खाली है।" पूछते हैं।

"जी, हाँ।" गाइड हेस पड़ती है, "इस कमरे को व्योर्नसन 'सुअर का कमरा' कहते थे। जब भी सिगरेट पीनी होती, वे इस कक्षा में आ जाते थे।"

एक अंगीठी के ऊपर बिल्ली का रंगीन रेखा–चित्र है।

"यह क्या है?"

"उनके नटखट पोती की करामात!"

पास ही चमड़े का एक बहुत बड़ा थैला लटक रहा है।

"यह क्या-?"

"प्रति दिन व्योर्नसन को हजारों चिट्ठियां आती थीं। इस थैले में भर कर, वे डाकखाने से घर तक लाई जाती थीं...।"

शाम हो रही है।

पीला-पीला प्रकाश और पीला लग रहा है—तापहीन!

हम एक साहित्यिक-तीर्थ यात्रा से जल्दी-जल्दी लौटने लगते हैं—फिर ओस्लो की ओर!

7/सी-2, हिन्दुस्तान टाइम्स अपार्टमेण्ट्स, मयूर विहार, फ़ेज-एक, दिल्ली-1100091

जनता की शक्ति

हुंकारों से महल की नींव उखड़ जाती है।
सांसों के बल ताज हवा में उड़ता है।
जनता की रोके राह समय में ताव कहां?
वह जिधर चाहती काल उधर मुड़ता है।

—राष्ट्रकवि स्व: दिनकर

भारतीय इतिहास की बुनियाद : अतीत का प्रभामण्डल

—हरिकृष्ण निगम

आज हमारे प्रबुद्ध वर्ग के एक बड़े हिस्से की नज़र में, जिसकी अंग्रेज़ी मीडिया पर काफ़ी अच्छी पकड़ है, देश के अतीत और पूर्वजों के विश्वासों को जरा भी महिमा-मण्डित करने का प्रयत्न शायद सबसे बड़ा अपराध बन रहा है। विषाक्त राजनीतिक समीकरणों के कारण ऐसे किसी भी अध्ययन में उन्हें साम्प्रदायिकता की बू आती है।

एक राष्ट्र, एक संस्कृति, भारतीयता की अविच्छिन्न धारा, समूहगत पहचान की खोज, समाज में तादीयत्व की भावना—आज यह सब बहुस्तरीय समाज के हितों के विरुद्ध माना जा रहा हैं पर इस वैचारिक प्रक्रिया में देश की अस्मिता का क्या होगा और अब तक सारी दुनियां के चिन्तक एवं विचारक हमें जिस सम्मान से देखते आए हैं लगता है किसी को इसकी चिन्ता नहीं है। राष्ट्रप्रेम के आदर्शों से दूर क्या आज की खतरनाक विचारधारा हमारी युवा पीढ़ी को और अधिक दिशाहीन, हताश या नकरात्मक दृष्टि नहीं देगी ?

आज हमें मीडिया के एक वर्ग में बताया जा रहा है कि देश के अतीत में ऐसा कुछ विशेष नहीं है जिस पर हम गर्व कर सकते हैं। उनकी दृष्टि में हमारी विरासत है पुरातन पंथी, मनुवादी जाति व्यवस्था पर आधारित खण्डित समाज, मध्ययुगीन सामतन्वाद और अन्तर्विरोधों से भरी सामाजिक दृष्टि। पर क्या हमें ज्ञात है कि पिछली पीढ़ी के विश्वविख्यात विदेशी विचारक और आज भी जो भारत को भविष्य की आशा मानते हैं हमें किस रूप में देखते आए हैं ?

सॉबनि विश्वविद्यालय, पेरिस में तीस वर्षों तक संस्कृत और भारतीय साहित्य पढ़ाने वाले आचार्य डा. लुई रेनू जिनका 1966 में निधन हुआ हिंदू धर्म और संस्कृत साहित्य पर चालीस से अधिक ग्रन्थों के रचयिता थे। अमेरिका के थेल विश्वविद्यालय में आमंत्रित आचार्य रहने के अलावा वे पश्चिम और पूर्व के कई शोध-सस्थानों के निदेशक भी रहे थे। अमेरिकी प्राच्यविद्या संस्थान भी उनके हिंदू धर्म पर दशकों के शोधकार्य के लिए ऋणी मानता है। 'आज के महान धर्म ग्रन्थ' माला में हिंदू धर्म का परिचय-ग्रंथ डाक्टर रेनू ने संकलित किया था। इसकी भूमिका में हिंदूधर्म के बारे में उन्होंने जो लिखा वह इतना प्रासंगिक है कि हर भारतीय को उसके बारे में जानना अपेक्षित है।

वे कहते हैं—हिंदू धर्म के लिए दर्शन एक बौद्धिक व्यायाम न होकर एक आध्यात्मिक अनुभूति है। वह सोचने के लिए उतना नहीं जितना पहचानने के लिए आमंत्रित करता हैं उसमें दार्शनिक और संसार में जो सम्बन्ध है वह एक प्रकार के सम्मोहन का संबंध है।

1368 HA/2000—3A

डा. रेनू ने कहा कि हिंदू दीक्षागम्य धर्म नहीं है। उसमें अनेक मार्ग और अने पद्धतियाँ हैं जिनमें से किसी को भी अपनाने की स्वतंत्रता है। इसीलिए हिंदू धर्म के लि सत्य एक अविभाज्य निधि है। रहस्य का मार्ग हर किसी के लिए खुला है और आध्यात्मि तत्व सर्वत्र विद्यमान हैं। अपने शुद्ध रूप में हिंदू धर्म ज्ञान का एक रूप हो जाता है, उ ज्ञान का जिससे भारत आने वाले प्राचीन यूनानी प्रभावित हुए थे और जो हमारी आज व विदग्ध संस्कृतियों के लिए फिर मूल्यवान हो सकता है।

प्रो. ए.एल बाशम इस सदी के सबसे बड़े प्राचीन भारतीय इतिहास के विशेषज्ञ मा जाते थे। इसके अलावा उन्हें संस्कृत और हिंदी का अथाह ज्ञान था। पारम्परिक ईसाई ध से उनका मोहभंग हो चुका था और लन्दन में स्कूल ऑफ ओरियण्टल और अफ्रीकन स्टडी के सी.ए. रेलैन्ड्स से उनका संस्कृत से परिचय हुआ था। डा. एल.बी. बर्नी जो एक स्वि नागरिक थे उन्होंने उनके शोध कार्य में दिशानिर्देश किया था और उन्हीं से हिंदी सीख थी। वे कहते हैं कि वे औपचारिक रूप से हिंदू धर्म में दीक्षित नहीं हुए पर उनकी आत्म हिंदू रही। उनका विश्वविख्यात ग्रंथ 'द वण्डर दैट वाज़ इण्डिया' उनका इस देश के प्राची इतिहास के प्रति अदम्य आदर प्रकट करता है। वे अन्य इतिहासकारों के विचारों के विरु थे जो मानकर चलते थे कि प्राचीन विश्व के हर हिस्से में सामान्य व्यक्ति विपन्न और दयनी थे। उनके अनुसार-प्राचीन भारत की स्थिति विभिन्न थी। वे इस बात पर दृढ़ थे कि 18व शताब्दी के रूसी यात्री एलेक्जेन्डर निकितिन के पहले के सारे वर्णनों में सामान्य भारती अत्यन्त खुशहाल थे। भारतीय संस्कृति से वे मानसिक रूप से जुड़े थे और उनके ग्रंथ आ भी हर भारतीय को प्रेरणा दे सकते हैं। अपनी मृत्यु के पहले विश्वभारती विश्वविद्यालय व उपकुलपति डा. निमाई साधन बोस को दिए एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा था : प्राची भारतीय संस्कृति का स्तर दुनियां की किसी भी पुरातन सभ्यता से बेहतर था। शायद उ समय का भारत रहने के लिए बाकी प्राचीन विश्व से कहीं अधिक सम्पन्न और वैभवशाल था।

अनेक विदेशी विचारकों ने सदैव माना है कि भारत की राष्ट्रीय पहचान की ज इसका धर्म है। भारतीय संस्कृति का ताना वही है जिसे आर्य या हिंदू धर्म कहा जाता है बाने के सूत इधर-उधर से आए हैं, पर वे सब ताने पर आश्रित हैं। गंगा में बहुत सी छोट बड़ी नदियां मिली हैं परन्तु मिलने पर जो पयस्विनी बनती है वह गंगा कही जाती है। प्रसिद्ध विचारक अबी डुबाय भारत को दुनियां का पालना कहते थे जहाँ से पश्चिम को भाषा, कानून नीति साहित्य, और धर्म का उत्तराधिकार मिला है। मनु ने मिश्र, ग्रीक, हिब्रू और रोमन विधि और समाज-संहिताओं को प्रेरणा दी जिससे सारे योरोपीय कानूनों का जन्म हुआ।

एडम ओस्बार्न केलीफोर्निया में रहने वाले एक प्रकाशक हैं जिनके पिता एक अंग्रेज थे और माँ पोलिश मूल की थी। उनका पालन-पोषण तमिलनाडु में श्री रमण महर्षि के आश्रम में हुआ था। हाल में उन्होंने लिखा कि विदेश में रहने वाले भारतीय अपनी राष्ट्रीयता और विरासत पर गर्व करते हैं। इसके विपरीत भारत में रहने वालों में राष्ट्रभावना इतनी तीव्र नहीं

1368 HA/2000—3B

हैं यदि भारत में रहने वाले भी अपने देश पर गर्व करने लगें तो यह देश तीसरे विश्व व स्तर से ऊपर उठकर दुनियां की बड़ी औद्योगिक शक्ति बन सकता है। ओसबार्न का कहन है कि भारतीयों को अपने देश पर उतना ही अभिमान करना चाहिए जितने सिंगापुरवासी य इज़रायली अथवा अमेरिकी करते हैं।

ऐसा क्यों है कि देश के एक वर्ग में राष्ट्रसम्मान की मात्रा अधिक है दूसरे में नहीं ओस्बार्न स्वयं प्रश्न करते हैं कि शायद मातृभूमि से दूर रहने पर वे यहाँ की विशिष्टता क महत्व सही सन्दर्भ में समझ पाते हैं; या इसका कारण भारत का औपनिवेशिक भूतकाल है क्या देश पर गर्व करना सीखने की चीज़ है? भारतीय विरासत में क्या तत्व हैं जिन प हम सबको गर्व करना चाहिए? आज कुछ लोग नई जड़ों की खोज में अपनी पुरानी जड़ को भूल जाना चाहते हैं और नकारात्मक मानसिकता व दुराग्रहों को बढ़ावा दे रहे हैं। ग करना व्यक्तिनिष्ट भावना की बात है; यह व्यक्ति की शक्ति का मूल स्रोत है। क्योंकि य गुण हममें लोप होता जा रहा है, हम् आत्मसंशय के शिकार हैं और इसीलिए देशप्रेम सिखा उतना सरल नहीं है। ओस्बार्न यह भी कहते हैं कि सही अंकों में यह देश अब भारत न कहा जा सकता है। वह भारत जिस पर मुगलों ने शासन किया और जिसे अंग्रेजों ने उपनिवे बनाया वह पूरा का पूरा एक उपमहाद्वीप था। कश्मीर से कन्याकुमारी तक और अफगानिस्ता आसाम और बर्मा की सीमा तक। सारी दुनियाँ इस देश को हिंदुस्तान कहती थी। उसी तर जिस तरह चीनियों का देश चीन है। यही इसकी दुनियाँ भर में पहचान थी। भारत-विज्ञा या इण्डोलाजी ज्ञान की पृथक विद्या थी। एक समय मुगल साम्राज्यवादी शासन में वे स्व राजकीय दस्तावेजों और अभिलेखों में इसे हिंदुस्तान कहते थे। सच तो यह है कि सोलह शताब्दी के बाद से हिंदू शब्द लगातार एक भौगोलिक व्याख्या के रूप में रहा था। सिंधु न के पार रहने वाले सभी देशवासियों को हिंदू संज्ञा दी गई थी। 19वीं और बीसवीं शताब के प्रारम्भ के दशकों तक चाहे वे लेनिन हो या जर्मन भारतवेत्ता यहाँ के देशवासियों व वे समग्र रूप से हिंदू ही कहते थे।

पर अंग्रेजों ने यह नाम छोड़ दिया और इसे इण्डिया कहा—शायद बहुसंख्यकों अपनी राष्ट्रीय पहचान भुलाने के उद्देश्य से। यह तो स्वतंत्रता संग्राम के दिनों के प्रारम्भ मुस्लिम दबावों और अंग्रेजों की जातीय विभाजन की नीतियों के कारण हिंदू शब्द पूर्ण धर्मावलम्बियों के पृथक अर्थ में प्रयुक्त किया गया। समय के साथ साथ शब्दों के अर्थ अवश्य बदलते हैं पर राजनीतिक दुराग्रहों के कारण इस देश में इसे संकुचित रूप में प्रयु कर अलगाव की भावना मीडिया के एक वर्ग द्वारा पैदा की गई है। ओस्बार्न के मत में ि और हिंदुस्तानी सिर्फ ब्रिटिश शासन के बाद से गुजराती, तमिल, कन्नड़, तेलगु आदि पह हो गए और शायद सिर्फ हिंदुस्तानी बाद में। यह भारतीयता की भावना उन्हें सालती है व वे सुदूर देशों में रहकर अपने देश की फिर नई पहचान वहाँ के जीवन-दर्शन की तुल करते हुए करते हैं।

विदेशों में भारत की पारम्परिक छवि को समझने के लिए विश्व-प्रसिद्ध विचा

आर्नाल्ड टायनबी, जिनका निधन 86 वर्ष की आयु में सन् 1975 में हुआ, के विचार जानना आवश्यक है। 'द वर्ल्ड एण्ड द वेस्ट' में उन्होंने भारत की भूमिका के बारे में विस्तार से लिखा है। "भारत अपने में एक समूचा विश्व है; वह एक महान गैर-पश्चिमी समाज है जिस पर अनेक आक्रमण ही नहीं हुए और चोटें पहुँचाई गई बल्कि इसको पूरी तरह पददलित और विजित किया गया। भारत की आत्मा के अन्दर पश्चिमी विचारों का लोहा काफी गहराई तक बैठ गया है।" उन्होंने यह भी कहा कि पश्चिमी हथियारों द्वारा भारत कभी विजित नहीं हो सकता यदि पहले लम्बे समय तक यह मुस्लिम आक्रान्ताओं द्वारा पददलित न किया गया होता।

ईसा की छठी और सातवीं शताब्दियों में जापान ने भारतीय बौद्धमत को चीनी रूपान्तर के साथ आत्मसात किया। दक्षिण-पूर्व एशिया की मुख्य भूमि तथा इन्डोनेशिया के निवासियों ने हिंदू और बौद्ध धर्म जिस तरह आत्मसात किया वह समाजशास्त्रियों के लिये आश्चर्य का विषय है। टायनबी के अनुसार इन्डोनेशियावासियों ने इस्लामी संभ्यता अपनाने के बाद भी हिंदू ओर बौद्ध विश्वासों व परम्पराओं को जिस स्तर पर अपनाया है, वह आज भी बेमिसाल है। वे लिखते हैं कि इन्डोनेशिया में तो हिंदू-बौद्ध परम्पराएं इतनी सशक्त रही हैं कि इस्लाम को उनसे समझौता करना पड़ा है। भौगोलिक अवरोधों के द्वारा अलग किए जाने के बावजूद किस तरह हिंदू धर्म खमेर जाति ने अपनाया था वह इतिहासाकारों के अध्ययन का विषय रहा है। अपने ही देश में बृहत्तर भारत के बिछुड़े सहधर्मियों के बारे में कोई बौद्धिक उत्सुकता नहीं दीखती है जब कि वे हरदम कहते हैं कि उनके पूर्वजों का धर्म हिंदू था। बोरोबुदूर, अंगकोरवाट और अंगकोर थोम के भव्य हिंदू-बौद्ध भग्नावशेषों और उनके वैभव के बारे में भी हमारे देशवासियों को पूरी तरह से ज्ञान नहीं है।

टॉयनबी ने एक विशेष बात कही है कि गैर-ईसाई देशों में विशेषकर भारत में एक से अधिक धर्मों का सह-अस्तित्व एक सामान्य घटना है। उन्होंने यह भी कहा कि ईसाई-पूर्व ग्रीको-रोमन जगत में, हिंदुओं और पूर्वी एशिया में एक से अधिक धर्मों तथा दर्शनों का सहअस्तित्व एक स्वभाविक बात रही है।

टायनबी ने जापानी विचारक दाइसाकू इकेदा से एक वार्तालाप में कहा था कि पश्चिम का पैतृक ईसाई धर्म यहूदी परम्परा वाले-सेमेटिक-धर्मों में सबसे ज्यादा असहिष्णु रहा है। जहाँ तक हिंदू और बौद्ध सभ्यताओं का प्रश्न है उनकी सहिष्णुता और समत्व दृष्टि पर टॉयनबी लगभग मंत्र मुग्ध से थे।

जब प्रसिद्ध विचारक आन्द्रे मारलो को कुछ दिनों पहले भारत में एक पुरस्कार से सम्मानित किया गया था उन्होंने कहा था—भारत ज्ञान का देश है और इसको फिर यह परिभाषित करना होगा कि आज विश्व में शिक्षा की बदलती आवश्यकताएं क्या हैं। जहां एक विश्व-स्तरीय विचारक भारत की ओर देखने की बात करता है वहीं खेद है कि हमारे बीच बुद्धिजीवियों का एक वर्ग राष्ट्रीयता की मूल अवधारणा पर भी संशय व्यक्त कर रहा है और अनास्था तथा राष्ट्रद्रोह को भी आधुनिक दृष्टि का बाना पहना रहा है।

अनेक विचारक मानते हैं कि आज हमारे देश की आध्यात्मिक और चारित्रिक बैटरी जो खासकर सामाजिक दायित्व और संवेदनशीलता से सम्बद्ध है, कमजोर हो चुकी है। महात्मा गांधी भी कहते थे कि महानता के सही गुणों के प्रदर्शन के लिए यह आवश्यक नहीं है कि आपके पास बड़े स्तर पर संसाधन हों। यह बात कुछ लोगों को अटपटी लग सकती है। पर क्या हमारी सुरुचि, उदारता, सुव्यवस्था और सन्तुलन में अपने चरित्र की गम्भीरता और अनूठापन नहीं दिखाया जा सकता है?

अभी दिसम्बर 99 में वाशिंगटन के गवर्नर और अमेरिकी राष्ट्रपति पद के लिए जारी दौड़ में अग्रिम पंक्ति के उम्मीदवार जार्ज डब्लू. बुश ने एक भाषण में बदलते अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य का आकलन करते हुए भविष्यवाणी की कि इस नई शताब्दी में प्रजातांत्रिक भारत विश्व के रंगमंच पर एक शक्ति के रूप में उभर सकता है। इसी तरह कुछ मिलती जुलती संभावनाओं का जिक्र कुछ दूसरे विचारक और विशेषज्ञ भी कर चुके हैं। हम भूल नहीं सकते हैं कि स्वतंत्रता के बाद दशकों तक विदेशी मीडिया यही रट लगाता था कि भारत का कोई भविष्य नहीं है। वे हमारे देश की निराशाजनक तस्वीर प्रस्तुत करने में आगे रहते थे। आज भी कुछ विशेषज्ञ कह रहे हैं कि भारतीय अपने देश के हित को राजनीति और सत्ता-संघर्षों से ऊपर रखना नहीं जानते। यह सच भी है क्योंकि कुछ दल तात्कालिक राजनीतिक लाभ के लिए देश की विदेशों में बनी छवि धूमिल करने में नहीं हिचकिचाते हैं।

विदेशियों की नजर में ऐसे कौन से तत्व हैं जो भारत को दुनियाँ के देशों से अलग रखते हैं। यदि हम गहराई से ध्यान दें तो इसकी अन्तर्निहित शक्तियों, उदार दृष्टि एवं सक्षमता की जड़ें इसके अतीत से जुड़ी हैं। हजारों साल की विरासत सिर्फ वैचारिक ही नहीं बल्कि इसके विज्ञान, दर्शन एवं सक्षमता के कीर्तिमान भी हैं जिन पर पश्चिम के विचारकों की दृष्टि तो गई है पर उन्हें हम स्वयं याद कर गर्व नहीं करना चाहते हैं।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक आईन्स्टाइन ने कहा था कि : "हमें भारतीयों का कृतज्ञ होना चाहिए कि उन्होंने हमें गिनती सिखाई जिसके बिना शायद कोई भी भावी वैज्ञानिक खोज़ सम्भव नहीं हो सकती थी।" बर्टेन्ड रसल ने तो यहाँ तक लिखा कि अंकों को 'अरबी अंक' नाम पश्चिम ने भ्रमवश दिया, वे तो वस्तुतः 'हिंदू न्यूमेरल' कहे जाने चाहिए। यह विस्मय की बात है कि अंकों का प्रयोग तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व के सम्राट अशोक के शिलालेखों में हुआ है। यह ज्ञान भारत से अरब देशों में गया फिर वहाँ से यूरोप और पश्चिम के देशों में। अरबी में आज भी अंकों को 'हिंदसे' कहा जाता है।

फ्रेंच गणितज्ञ और भौतिकशास्त्री ला प्लेस ने नेपैनोलियन के शासनकाल में लिखा था : "यह भारत है जिसने हमें सारे अंकों को मात्र 10 चिह्नों में व्यक्त करना सिखाया।" ब्रह्मगुप्त प्राचीन विश्व का प्रथम गणितज्ञ था जिसने शून्य को अंक की तरह मानकर इसके गणित संबंधी कार्य किए। प्रसिद्ध विचारक लान्सेलाट होगबेन के अनुसार दुनियां के लिए शून्य की खोज से बड़ा क्रान्तिकारी योगदान हो ही नहीं सकता है।

गणित का ज्ञान हमारे देश में ईसा पूर्व दूसरी सदी में ही जड़ ले चुका था। भास्कराचार्य का 'लीलावती' नामक ग्रंथ आधुनिक गणित का प्रथम अध्याय माना जा सकता है। सन् 499 ईस्वी में आर्यभट्ट अपने गणित के मौलिक सिद्धान्त प्रतिपादित कर चुके थे। श्रीधराचार्य ने ग्यारहवीं शताब्दी में चतुष्कोणीय समीकरण—क्वाडरेटिक इक्वेशन-की खोज कर ली थी। प्राचीन ग्रीक और रोमवासी जिस सबसे बड़ी संख्या का प्रयोग कर सकते थे वह 106 थी जबकि प्राचीन हिंदू 10 अंक का 53 तक घात—टेन टु द पावर फिफ्टी थ्री—तक प्रयुक्त करते थे। वैदिक गणित में ईसा से 5000 वर्ष पूर्व इनके विशिष्ट नाम भी ज्ञात थे। आज भी सबसे बड़ी प्रयुक्त होने वाली संख्या—टेरा—(टेन टु द पावर आफ ट्वेल्व) है।

पश्चिमी योरोप में बीजगणित का ज्ञान ग्रीस से नहीं अरबों के माध्यम से आया था जिन्होंने इसे भारत से पाया था। बीजगणित के लिए 'अलजबरा' शब्द अरबी का ही है। भारत में बीजगणित के जन्म दाता आर्यभट्ट थे।'पाई' के मूल्य की सबसे पहले गणना बौधायन ने की थी तथा आज जिसे पायथोगोरस प्रमेय-थ्योरम—कहते हैं वह छठी शताब्दी में भारत में सिद्ध कर ली गई थी।

हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की नागरी सभ्यता में उत्खनन से प्राप्त ईंटों के आकार से सिद्ध होता है कि ईसा पूर्व 2500 में प्राचीन भारत को लोगों को ज्यामिति का पूर्ण ज्ञान था। सबसे पहले आर्यभट्ट ने त्रिकोण का क्षेत्रफल ज्ञात करने के नियम बनाए थे जिससे त्रिकोणमिति का प्रारम्भ हुआ।

जहाँ तक गणित-ज्योतिष और खगोल विज्ञान का प्रश्न है ग्रहों की गति 499 ईसवी में आर्यभट्ट द्वारा खोज ली गई थी। सन् 505 में लतादेव और सन् 628 में ब्रह्मगुप्त ने ग्रहण के समय की गणना में पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया था। वे वर्षों पहले किसी सूर्य या चंद्रग्रहण के समय की सही गणना कर सकते थे। यह ज्ञान यूरोप में बाद की अनेक शताब्दियों तक उपलब्ध नहीं था। लतादेव के 'सूर्य सिद्धान्त' में धरती की धुरी का ज्ञान था जिसे वे सुमेरू कहते थे। वाराहमिहिर ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि पृथ्वी गोल है और अपनी धुरी पर परिक्रमा करती है। दूसरे भारतीय खगोल शास्त्री भी कॉपरनिकस से बहुत पहले इस तथ्य से परिचित थे।

ईसा की पाँचवीं शताब्दी में भास्कराचार्य ने पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा के सही समय की गणना की थी। पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा में 265.258756484 दिन लेती है यह योरोपीय खगोलशास्त्रियों से सैंकड़ों साल पहले भास्कराचार्य ने लिखा था। जहां तक समय के मापदण्डों और विभाजन की खोज का प्रश्न है दिन, मास और वर्षों का नामकरण और पंचांग बनाने की विद्या भारत में ही सबसे पहले आई। 505 ईस्वी में लतादेव ने अपने सूर्य सिद्धान्त ग्रंथ में वर्ष को 12 महीनों में विभाजित किया था। सौरमंडल का पृथ्वी के वातावरण पर प्रभाव और सप्ताह के साल दिनों का नामकरण पहले भारत में ही हुआ था जो सारी दुनियां में स्वीकृत हुआ। जूलियन और ग्रेगरी केलेन्डर तो तुलनात्मक रूप से बहुत बाद की

ग्वस्थाएं हैं और आज का पोप ग्रेगरी का बनाया केलेन्डर तो इंगलैण्ड में मात्र पिछले तीन ौ साल पहले ही लागू हो पाया था।

भास्कराचार्य अपने 'सिद्धान्त शिरोमणि' ग्रंथ में गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त पर न्यूटन । शताब्दियों पहले चर्चा कर चुके थे। अंकों के विज्ञान में आंगुलिक-डिजिटल-पद्धति भी ारतीयों की खोज है। बौद्ध मिशनरियों द्वारा यह ज्ञान चीन गया था। अरबों ने भी इसे ापनाया और वहाँ से यह ज्ञान योरोप गया। जर्मन लेखक थामस आर्य के अनुसार सिन्धु भ्यता में जो बाँट या वजन प्रयुक्त होते थे उनकी नाप दशमलव पद्धति पर थी और वे क द्विआधारी-बाइनरी-पद्धति पर आधारित थे। पियरे लाप्लेस ने तो यहां तक कहा कि हमें ारतीयों का आभारी होना चाहिए कि दशमलव पद्धति हिंदुओं द्वारा आविष्कृत की गई है।

जहाँ तक लोहा बनाने और ढालने का प्रश्न है वह भारत में 3000 ईसा पूर्व ही ोजॅ निकाला गया था। दिल्ली में महरौली का अशोक स्तम्भ और दूसरा कर्नाटक में प्राप्त ौह स्तम्भ इस बात का साक्ष्य है कि भारत में धातु-शिल्प एवं धातुविज्ञान काफी विकसित ा। लगभग 2500 ई.पू. सिन्धु घाटी की सभ्यता में तांबे और जस्ते के उपकरण मिले हैं। रसरत्नाकर' नामक प्राचीन ग्रंथ के अनुसार राजस्थान के जवार नामक स्थान पर जस्ते का ाम होता था।

रसायन शास्त्र भी प्राचीन भारत में काफी विकसित था। 'रसविद्या' या कीमियागीरी सा की पाँचवी शताब्दी में काफी फलफूल रही थी। तांबे का तूतिया, लोहे और सीसे के ार्बोनेट बनाना भारतीयों ने सबसे पहले सीखा था।

मानव जाति का प्राचीन चिकित्सा व दवाओं का सर्वाधिक पुराना ज्ञान आयुर्वेद है। ौषधियों के जनक चार्वाक ने आयुर्वेद के विभिन्न पक्षों का संकलन 2500 वर्षों पहले किया ा। यह इतना विकसित ज्ञान था कि चिकित्सा और रोगों की परिभाषाओं का कोश 'निघण्टु' े रूप में संकलित किया गया था। आज जड़ी बूटियों की वनस्पति की 4500 प्रजातियाँ ात हैं जिनमें से 16000 का वर्णन आयुर्वेद में आया है। सदियों से इस देश में उनका प्रयोग ोता रहा है। पर आश्चर्य की बात है कि इन 'हर्बल' औषधियों का 45 प्रतिशत पेटेन्ट अधिकार ीनियों के पास है, 20 प्रतिशत जापानियों के पास और कवेल मुट्ठी भर स्वत्वाधिकार भारतीयों े पास है।

आधुनिक रूपंकर-प्लास्टिक-शल्यचिकित्सा का जन्म भी भारत में हुआ था। ईसा पूर्व ौथी शताब्दी में सुश्रुत ने पहली प्लास्टिक शल्य चिकित्सा की थी। वैदिक युग में प्रकृति ी ओर पूर्ण ध्यान देने के कारण दुनियां का सबसे पहला वनस्पति या पेड़ पौधों का विस्तृत र्गीकरण प्राचीन संस्कृत साहित्य में मिलता है।

दुनियां का पहला यंत्रीकृत नगर हड़प्पा और मोहनजोदड़ो के उत्खनन से मिला

हैं उस समय भी वस्तु और भवन निर्माण कला और नगर संयोजन की विकसित तकनीक थी। आश्चर्य है कि ईसा के 2500 वर्ष पूर्व भी उन नगरों में दो स्टेडियम थे और जल निकास प्रणाली भी थी।

प्राचीनतम लिखे शब्दों का साक्ष्य जो हड़प्पा में प्राप्त हुआ है वह 5500 वर्ष पुराना वैदिक लेखन है। दुनियां की पहली विकसित भाषा और इन्डो-योरोपीय भाषाओं की जन्मदात्री संस्कृत है। आर्य परिवार की भाषाओं का श्रोत होने से शायद भाषाशास्त्री ही खुले आम आज कह पाएंगे कि यूरोप की आधुनिक भाषाएं और हमारी हिंदी का श्रोत एक ही है। संस्कृत की वर्तनी-आथेग्रिफी-पूर्णरूपेण वैज्ञानिक और ध्वन्यात्मक-फोनेटिक हैं इससे अधिक सुव्यवस्थित लेखानुकूल उच्चारण किसी ध्वन्यात्मक वर्णमाला में उपलब्ध नहीं है। इसकी वर्णमाला में 63 ध्वनियां और वर्ण है। रूसी वर्णमाला में मात्र 35 वर्ण हैं, स्पेनिश में 35, फारसी में 31, अंग्रेजी में 26 तथा लेटिन और हिब्रू में केवल बीस-बीस वर्ण हैं। 'फ़ौर्ब्स' पत्रिका के अनुसार संगणकों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त विश्वभाषा संस्कृत ही है। पिछली पीढ़ी के अमर भारतवेत्ता मोनियर विलियम्स ने लिखा था : "सच तो यह है कि संस्कृत लिपि ज़ितनी अच्छी है उतनी अच्छी और कोई लिपि नहीं। मेरा तो यह मत है कि संस्कृत लिपि मनुष्यों की उत्पन्न की हुई नहीं, देवताओं की उत्पन्न की हुई है।"

विश्व का सबसे पहला विश्वविद्यालय 7000 ईसवी पूर्व तक्षशिला में स्थापित किया गया था। यहाँ 10,500 से अधिक विद्यार्थी दुनियां के कोनों से आकर 60 से अधिक विषयों का अध्ययन करते थे। ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में नालन्दा विश्वविद्यालय अपने शिखर पर था और शिक्षा के क्षेत्र में बड़ा योगदान करता थां। चीनी विद्वान ह्वेनसांग भी यहां अध्ययन करने आया था।

नौकायन या समुद्रयात्रा की कला में भारतीय पारंगत ही नहीं उनकी साहसिक यात्राओं की गौरव गाथाएं दक्षिण पूर्वी एशिया के सुदूर द्वीपों के अलावा दूर के महाद्वीपों के ध्वंसावशेषों में उपलब्ध हैं। हिंदूकुश से मोक्सिको तक उन्होंने अपनी छाप छोड़ी है। 'नेवीगेशन' भी संस्कृत के 'नौ' (नाव) और गति या चाल शब्दों से बना है। प्राचीन भारतीय विचारधारा में जोखिम के संरक्षण या बीमे की अवधारणा के बीज स्पष्ट हैं। ऋग्वेद में 'योगक्षेम' शब्द व्यवसाय के जोखिम के रूप में आया है। मनु, याज्ञवल्वय और कई प्राचीन संहिताओं में एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने वाले सामान पर सुरक्षा शुल्क की बात उठाई गई। कौटिल्य का अर्थशास्त्र तो जोखिम की भरपाई करने के अनेक नियम बना चुका था।

शासन के चुनावों पर आधारित प्रजातांत्रिक ढांचे की नीवं भी सबसे पहले भारत में पड़ी थी। ऋग्वेद में कहा गया है—"गणतंत्र तुम्हें सम्राट की तरह चुनना है। यह राजत्व तुम्हारे दुराचरण से छिन सकता है।" अथर्ववेद में लिखा है—"सभी एक उद्देश्य और मस्तिष्क से एक सहमति वाले नेतृत्व में भाईचारे के साथ आगे बढ़ें।"

प्रसिद्ध विचारक मास्टरलिंक के अनुसार इस बात पर वादविवाद करना असम्भव है कि भारत में ही समस्त ज्ञान की जड़ें विद्यमान हैं। प्रसिद्ध अमेरिकी लेखक मार्कट्वेन के अनुसार "भारत मानव-जाति का पालना है, इतिहास की मां है, दंतकथाओं की दादी है और परम्पराओं की पुरातन जननी है।" मानव इतिहास के अत्यन्त रहस्यम, रोमांचक एवं प्रेरक प्रसंग भारत से ही उद्भुत हुए हैं।

विल डूरेन्ट ने अपने ग्रंथ 'सभ्यता की गाथा' में लिखा है कि भारत हमारी जाति की मातृभूमि है और समस्त भारतीय भाषाओं की मां भी संस्कृत ही है। वह हमारे दर्शनशास्त्र और गणित की जननी है और ईसाई धर्म में अन्तर्निहित आदर्शों की भी सृजक है। साथ ही हमारे प्रजातंत्र की भी वह मां है।" भारत मां अनेक अर्थों में हम सबकी मां है। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान डा. मैक्समुलर ने अपने ग्रंथ 'सैक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट' में लिखा है : "यदि हमें सारे विश्व की ओर देखकर यह पता लगाना है कि वह कौन सा देश जिसे प्रकृति ने सारी सम्पत्ति, समस्त शक्ति और जो धरती पर स्वर्ग हो सकता है—तब मैं भारत की ओर इशारा करूँगा।" उन्होंने यह भी लिखा है कि विश्व में उपनिषदों से अधिक "रोमांचित, पुलकित करने वाला और प्रेरक" ग्रंथ है ही नहीं।

एक दूसरे विचारक विलियम जेम्स ने लिखा है प्राचीन वेद व्यावहारिक कलाओं, चिकित्सा, संगीत वास्तु कला आदि जीवन के हर पक्ष के अलावा संस्कृति, धर्म, नीतिशास्त्र, विधि मौसम विज्ञान, ब्रह्माण्ड विज्ञान आदि अनेक विषयों का विश्वकोश है। सर जॉन उडरफ ने भी लिखा है कि "भारतीय वैदिक सिद्धान्तों की परीक्षा यह सिद्ध करती है कि उसके विषय पश्चिम के अत्याधुनिक वैज्ञानिक और दार्शनिक विचारों से तालमेल खाते हैं।" व्हीलर विलकाक्स लिखते हैं : "भारत जो वेदों की भूमि है, जिसमें केवल सम्पूर्ण जीवन के लिए धार्मिक विचार ही नहीं बल्कि ऐसे तथ्य भी हैं जिन्हें विज्ञान सत्यापित कर चुका है।"

एमेलिन प्लूनरेट नामक लेखिका ने अपने ग्रंथ 'कैलेन्डर्स एण्ड कान्सटेलेशन' में लिखा है कि 6000 ईसा पूर्व हिंदू खगोलशास्त्री इतने आगे बढ़ गए थे जिस पर विश्वास नहीं होता है। पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, ग्रहों और आकाशगंगा के आयामों की बात विस्तार से करने के अलावा सृष्टिशास्त्र संबंधी ज्ञान भी वैज्ञानिक दृष्टि से भरा है।

जर्मन दार्शनिक शापेनहज़ायर ने लिखा है कि इस दुनियां में वेदों जैसा कोई ग्रंथ नही है जो आत्म मंथन और उदात्त भावनाओं को तीव्रता दे सके। इसीलिए शायद महान लेखक विल डूरेन्ट बार-बार लिखते हैं कि भारत हमें आज भी सहिष्णुता और परिपक्व मस्तिष्क की सौम्यता, आत्मिक ज्ञान और मानव मात्र के प्रति प्यार सिखा सकता है। भगिनी निवेदिता, जो पहले मार्गरेट एलिजाबेथ नोबुल थी और सन् 1867 में आयरलैण्ड में जन्मी थी, पूरी तरह भारतमय हो चुकी थी। स्वामी विवेकानन्द के सान्निध्य के बाद भारतीय इतिहास के भावपूर्ण और रोमांचक पक्ष वे दुनियाँ के सामने लाई जिससे ब्रिटिश सरकार और मीडिया भी उनसे रुष्ट था। उन्होंने लिखा कि 590 ईसा पूर्व में समृद्ध और विकसित राजगिर की तुलना प्राचीन

ा से की जा सकती है और लगभग उसी समय के इर्द-गिर्द बने और बाद तक विकसित
। एलौरा के चैत्यों के भित्ति चित्रों की गुणवत्ता दुनियां में अनूठी हैं उन 26 विशाल
ं के निर्माता एक अत्यन्त कर्मठ, समर्पित बुद्धिमान और संवेदनशील समूह के अतिमानव
सकते है।

जहाँ पश्चिम के अनेक विचारक भारत के प्रति आशावादी रहे है, हमारे ही आज
द्ध वर्ग में कुछ लोग पहचान की शंका और दोराहे पर खड़े होकर नई पीढ़ी में राष्ट्र
ो संशय के बीज बो रहे हैं। अपने देश की सभ्यता और संस्कृति की महानता को
मेत करने के लिये किसी प्रमाणपत्र की आवश्यकता नहीं पर आज के कुछ प्रगतिशील
सकारों की अपनी अलग व्याख्याओं द्वारा देश की अस्मिता पर गर्व करना तो दूर भव्य
या प्राचीन गौरव की बात करने पर भी अपराध-बोध कराया जा सकता है। पुरोगामी
और ऐतिहासिक दृष्टि के तथाकथित संरक्षक आश्चर्य नहीं पारम्परिक दृष्टिकोण को
ट्रवादी उन्माद की संज्ञा दे दें।

फिर भी हम युवा पीढ़ी को इंगित कर वही कहेंगे जो आर्नाल्ड टॉयनबी ने कहा
"आज यह स्पष्ट हो गया है कि वह अध्याय जिसका प्रारम्भ पश्चिम से हुआ उसका
न भारत से फिर होगा। मानव-इतिहास के इस भयावह क्षण में मानवता के उद्धार का
भारतीय मार्ग ही बचा है।"

ोवन आकाश, फोरजेट हिल, मुंबई-400036

'नहीं' मत कहना। 'मैं नहीं कर सकता' यह कभी न कहना। ऐसा कभी नहीं हो सकता
ः तुम अनन्तस्वरूप हो। तुम्हारे स्वरूप की तुलना में देश-काल कभी कुछ नहीं है।
ो जो इच्छा होगी—ही कर सकते हो—व तुम सर्वशक्तिमान हो।

—स्वामी विवेकानन्द

भारत में भारतवासी

डा. के.डी. कानोडिया

हमारा भारत (भौगोलिक परिवेश में) हिम का विशाल मुकुट पहिने-अपनी गोदी में गंगा-यमुना, व्यास-रावी, नर्मदा-गोदावरी व ब्रह्मपुत्र आदि नदियों की अठखेलियां देखता; समुद्र से पद-प्रक्षालन कराता; फल फूलों से अटा वन-वैभव लुटाता असंख्य वन प्राणियों व जीवों पर अपना प्यार उड़ेलता; कहीं सर्दी, कहीं गर्मी की बहार दिखाता; कहीं रेत कणों के टीलों से अपना महारास रचाता—यह भारत! (सामाजिक परिवेश में) विभिन्न रंगों, विभिन्न मानव आकृतियों, विभिन्न रहन-सहन-पहिनावों, विभिन्न आचार-विचारों, विभिन्न बोलियों वाले देशवासियों—को अपनी सीमा में असीम सुख देता—यह भारत! प्राचीन से अर्वाचीन तक हज़ारों वर्षों की सभ्यता के विकास के प्रत्येक सोपान को अब भी सुरक्षित रखता आया—यह भारत! अपनी मूलधारा में अनेक नदी-नालों को समेटती गंगा तरह हर आगन्तुक को अपने में मिला लेने वाला—यह भारत! विविधता और भिन्नता में एकता का जादू जगाने वाला—यह भारत! स्वतंत्र विचारों की धरती, आत्मचिंतन की धरती, अनन्त अनुभवों को वाणी देने की धरती—यह भारत! (अतीत के परिवेश में) सावित्री और सीता का, पातंजलि व अष्टावक्र का, बुद्ध व महावीर का, राम व कृष्ण का, शबरी व विदुरानी का, वाल्मीकी व व्यास का, दधिचि व कर्ण का, नचिकेता व एकलव्य का, विदुर व चाणक्य का, मीरा व रसखान का, प्रताप व शिवाजी का, हाड़ारानी व पद्मिनी, कबीर व नानक का, दयानन्द व राममोहन राय का, भगतसिंह व राजगुरु का, गांधी—विवेकानन्द और न आने कितने अन्य महापुरुषों व बलिदानियों की धरती—यह भारत! भारत की मूल विचार धारा : भारत के मनीषियों व विचारकों ने कभी भी संकीर्णता को नहीं अपनाया। उनके विचार सार्वभौमिक व सार्वकालिक रहे हैं! हमारे यहां चार युगों की कल्पना की गई है। इन चार युगों की छवि हम बचपन, जवानी, प्रौढ़ावस्था व बुढ़ापे में देख सकते हैं। शैशव व बालपन सत्य का सुलभ साकार रूप होता है! कोई फरेब नहीं, भय नहीं, लालच नहीं, काम नहीं, क्रोध नहीं, अहंकार नहीं, लालसाओं का दरिया नहीं! हज़रत ईसा ने भी शिशु को प्रभू का रूप कहा था! शैशव जाति का धर्म या किसी देश की परिधि से मुक्त है! शैशव कल के लिए नहीं सोचता-प्यार पर न्यौछावर हो जाता है! शैशव के सतयुग को प्रत्येक व्यक्ति घर-घर में देख सकता है! त्रेता मनुष्य के यौवन का प्रतीक है! इसमें कामावेश होता है, भावावेश होता है। इसमें राम भी सीता के प्रति आकर्षित हो जाते हैं। सीता भी स्वर्ण मृग के लिए ललचा जाती है, राम पत्नी के कहने पर स्वर्ण मृग के पीछे भाग पड़ते हैं! भावावेश में राम 'राज्य' को ठुकरा देते हैं, सूर्पणखा के नाक-कान कटवा देते हैं, दोस्ती के लिये बाली को छल से मारने में नहीं हिचकते, स्त्री के खो जाने पर रोते भी हैं, रावण से लड़ते भी हैं, फिर धोबी के कहने पर पत्नी को घर से भी निकाल देते हैं! द्वापर प्रौढ़ावस्था का प्रतीक है, इसमें व्यक्ति समाज का अंग बन जाता है, न्याय अन्याय की बात सोचता है। इस अवस्था में उसे व्यसन भी घेर लेते हैं! इसमें व्यक्ति की 'फिसलन' समाज के विनाश का कारण बन जाती है! महाभारत की कथा बताती

है कि एक ऋषि होकर पराशर ने मछुआरे की बेटी को पटाने में अपनी शक्ति का दुरुपयोग किया, शान्तनु की कामान्धता से देवव्रत (भीष्म पितामह) का जीवन व्यर्थ चला गया, राज्य ने एक योग्य शासक खो दिया, गुरु-द्रोण ने राजकीय प्रशंसा के लिए एकलव्य का अंगूठा कटवा लिया--और गुरु परंपरा पर कालिख पोत दी, युधिष्ठिर ने जुए में पत्नी दांव पर लगा दी, द्रौपदी ने नारी मर्यादा का उल्लंघन कर दुर्योधन आदि को 'अंधे के पुत्र' कहा, और प्रतिकार में उसे नंगा करने का प्रयास किया गया--इन सबका अंत समाज को विनाश की ओर ले गया—जिसे भगवान कृष्ण भी नहीं रोक सके! कलियुग मनुष्य की ढलती उम्र का प्रतीक है—चारों ओर कष्ट का वातावरण होता है। मोह उसे घेरता है, तिरस्कार उसे सताता है! लालसाएं उसे घेरती हैं, मज़बूरियां उसे कुंठित करती हैं! अन्दर की घुटन उसे परेशान करती है! हम अपने तरीके से इसे बुरा युग कहते हैं! हमारे चिंतक हर पहलू की गहराई तक गए हैं! उन्होंने समाज के महत्त्वपूर्ण अंग नारी के अनेक रूप देखे हैं "विश्वास के रूप में वह पत्नी है, मित्रता के रूप में वह जीवन-संगिनी है, वात्सल्य के रूप में वह जननी है, वरदान के रूप में वह भवानी है, ज्ञान के रूप में वह सरस्वती है, ऐश्वर्य के रूप में वह लक्ष्मी है, सौन्दर्य के रूप में वह अप्सरा है, प्रेम के रूप में वह प्रेमी की आत्मा है, त्याग के रूप में वह सीता है, क्षमता के रूप में वह देवकी है, ममता के रूप में वह यशोदा है, तपस्या के रूप में वह पार्वती है, प्रतिशोध के रूप में वह चंडी है, दुर्बलता के रूप में वह अबला है, समर्पण के रूप में वह वेश्या है! इस प्रकार हमारे साहित्य में सीता व्यथा की दर्द भरी कहानी है, राधा प्रेम की एक दीप-शिखा है, अहिल्या अत्याचार की एक मूक तस्वीर हैं, द्रौपदी प्रतिशोध की एक ज्वाला है, यशोधरा उपेक्षा की एक कड़ी है, लक्ष्मीबाई वीरता की प्रतिमूर्ति है, मीरा भक्ति की चरम मीमांसा है! हरिश्चन्द्र की पत्नी हमें याद दिला रही है कि पुत्र का कफन भी मां ही अपना आंचल फाड़कर बना सकती है—बाप के सामर्थ्य से यह बाहर है! हमारे चिंतक कहते हैं—जहां प्रेम की चर्चा होती है वहां प्रेम नहीं मिलता। पंडित जब प्रेम की बात करते हैं तो उनका ध्यान पैसे पर होता है, विद्वान जब प्रेम की बात करते हैं तो उनका ध्यान ख्याति पर होता है, धनवान जब प्रेम की बात करता है तो उसका मन भगवान को रिश्वत देने पर होता है, राजनेता जब प्रेम की पुकार करता है तो उसका उद्देश्य कुर्सी पाना होता है! आगे भारत के चिंतक कहते हैं : दुनिया के संबंध विश्वास पर टिके हैं। देश प्रेम में हमारा विश्वास है तो हम देश के लिए कुर्बान हो जाते हैं, पैसे में हमारा विश्वास है तो दूसरों का खून कर देते हैं, तकदीर में विश्वास है तो सब कुछ चुप चाप सह लेते हैं, यदि कर्म में हमारा विश्वास है तो बड़ी से बड़ी कठिनाइयां झेल जाते हैं। जिस प्रकार नींद के बिना शारीरिक स्वास्थ्य की कल्पना नहीं की जा सकती, वैसे ही विश्वास के बिना मानसिक स्वास्थ्य कायम नहीं रह सकता! इसके अलावा हमारे शास्त्र बताते हैं कि भय, लालच व तसल्ली इंसान की कमज़ोरी है और समाज के अग्रणी इनका प्रयोग कर लोगों की मूर्खता को भुनाते रहते हैं! आज का भारत--दुनिया की प्राचीनतम सभ्यता का देश भारत आज कुछ उखड़ा-उखड़ा, उजड़ा-उजड़ा लग रहा है! जिसे हरिश्चन्द्र ने सत्य की मिसाल दी, जिसे राम ने त्याग मर्यादा की मशाल दी, जिसे कृष्ण ने अन्याय से संघर्ष का संदेश दिया, जिसे बुद्ध व महावीर ने इच्छाओं को सीमित कर प्रेम का पाठ सिखाया, जिसे कबीर ने वैराग्य व विवेक की ओर उन्मुख किया, जिसे विवेकानन्द ने धर्म का वैज्ञानिक रूप दिखाया

वह देश आज अव्यवस्था का शिकार हो रहा है! आज यहां प्रजातंत्र भीड़तंत्र में परिवर्तित हो रहा है, राजनीति भ्रष्टाचार व अपराधीकरण में लिप्त हो रही है, धर्म अडंबर व लेबलवाद का पर्याय बन रहा है, भोली-भाली जनता असहाय होकर मन्थरावादी बन रही है, प्रतिभा विदेशों की ओर पलायन कर रही है। न्याय की व्यवस्था चरमरा रही है, चिकित्सा व्यवस्था व्यवसाय बनकर रोगियों का उपहास कर रही है, शिक्षा पद्धति संस्कारों को विकृत कर रही है, मिलावट व फर्जीपन की बाढ़ आ रही है, हादसों में भी लूट खसोट देखी जा रही है, शोषण से तुष्टि प्राप्त की जा रही है, विदेशी चका चौंध में युवा पीढ़ी भ्रमित हो रही है, नारी-समाज यौन विकृति की ओर धकेला जा रहा है, दूर-दर्शन उच्छृंखलता व नग्नता को बढ़ावा दे रहा है, इस आज के भारत के लिए कुछ तो सोचना पड़ेगा, किसी को तो सोचना पड़ेगा! यह स्थिति गर्व की नहीं—शर्म से सिर झुकाने वाली है! आज हमारी सोच की धुरी हिल गई है।

भारतवासी कभी अपनों से, कभी दूसरों से लुटने के आदी हो चुके हैं—उन्हे आंख, कान व मुंह बंद रखने की शिक्षा दी जाती रही है। हमारी आस्था व विश्वास को नींद की गोली से सुलाया जाता रहा है। हमारे अंधविश्वासों को हवा दी जाती रही है, हमारे शास्त्रों के मर्म को उलझाया जाता रहा है। हमारे चिंतक सो गए हैं, रहनुमा भूमिगत हो गए हैं, आम आदमी सिर्फ़ तसल्ली के पीछे दौड़ रहा है!

सिर्फ थोड़े समय से विकास की ओर उन्मुख होने वाले देश वैज्ञानिक उपलब्धियों में, ईमानदारी, सामाजिक न्याय व व्यवस्था में, वातावरण के संरक्षण में, पशुओं के पालन में, हमसे कहीं आगे निकल गए हैं और जहां हम मातृदेवो भव, पितृदेवो भव की सिर्फ रट लगाते रहे, अनेक देशों ने बुजुर्गों के लिए सुरक्षित प्रबंध करने में अपनी व्यवस्था पक्की कर ली!

और तो और, सबसे ख़तरनाक बात यह है कि हमारे शासकों व व्यवस्थापकों ने थोड़े में गुज़ारा करने वाले, संतोष से संतुष्ट रहने वाले, व फकीरी में मस्त रहने वालों से उनकी मस्ती छीन ली।

आज परिवार में विश्वास की कमी आई है, धर्म में विश्वास का आधार हिला है, राजनीति में विश्वास का रूप धुंधला हुआ है! और जिस देश में आस्था व विश्वास की नींव हिल जाती है, वहां विज्ञान की बुलंदी सुख नहीं दे सकती! आज बलवान निर्बल को चूस रहा है, धनवान धनहीन को, चतुर बुद्धिहीन को, राजनीतिज्ञ जनता को! हम विदेशों से ऋण ले रहे हैं, वैज्ञानिक सहयोग ले रहे हैं, लेकिन उनसे सामाजिक व्यवस्था, न्याय की प्रक्रिया, या प्रशासनिक चरित्र की सीख नहीं लेते!

हमारे यहां नारी को पूज्य माना जाता रहा है, और दूसरी तरफ लाखों कन्याएं गर्भ में ही मार दी जाती हैं, हजारों दहेज की बलिवेदी पर फूंक दी जाती हैं, नन्हीं मुन्नी बच्चियां बलात्कार की शिकार हो जाती हैं! हम अपनी कमियों पर विधिपूर्वक पर्दा डाल देते हैं—सिर्फ

मंदिरों में 'मां' की मूर्ति का पूजन करके!

समस्या विश्लेषण : हमारे हालात के पीछे साज़िश है—कुछ अपनों की कुछ दूसरों की। हमारी अशिक्षा और गरीबी इसके मूल हैं, कुरीतियां व भाग्यवाद इसके फल! हम अपनी आराध्य 'मां' को शक्ति का प्रतिरूप मानते हैं, और स्वयं दुर्बल रहकर गर्वान्वित महसूस करते हैं, हम राम से त्याग और कृष्ण से न्याय के लिए संघर्ष नहीं सीखते! हम बुद्ध व महावीर से प्रेम का पाठ नहीं पढ़ते, कबीर व नानक से जीवन का मर्म नहीं समझते! हम जातिवाद से घिरे हैं, प्रांतवाद से घिरे हैं, बोली से घिरे हैं, धर्म में अधार्मिक रूप से घिरे हैं!

हमारे नेता कुर्सियों के लिए पागल हो रहे हैं, वे वास्तव में जनता को ग़रीब व अशिक्षित रखना चाहते हैं—जिससे उनकी गद्दी के लिये कोई ख़तरा न हो! वे प्रजातंत्र में जनता रूपी बुढ़िया को बड़बड़ाते देख अप्रभावित रहते हैं! धर्म में व्यवसायिकता इतनी फैल गई है कि कैसेट हमें सब कुछ भगवान से मांगना सिखा रहे हैं, रोटी से लेकर वैभव तक! समाज में चार्वाक की विचारधारा छा रही है! ऋण लो, खावो पीवो मौज करो! विदेशों से ऋण बढ़ रहा है, व्यक्ति व संस्थाएं ऋण लेकर पचा रहीं हैं! फिल्मों के गाने नग्नता को उभार रहे हैं, बच्चों को गुरुकुल की बजाय वेश्यालय के दृश्य दिखाए जा रहे हैं। ऐसा गाना फिल्माया जा रहा है जिसमें लड़की गुड़ की डली बनकर लड़के को चखने के लिए बुला रही है, चोली के नीचे क्या है—बता रही है! यदि यह अभिमान की बात है, यदि विदेशी सभ्यता के केवल नग्नता लेनी रह गई है, तो फिर भारत की गौरव गाथा का संदर्भ मिटा देना चाहिए! कैसा आलम है जब सूरमाओं व बलिदानियों के बालक इस गीत को गाते झूम रहे होते हैं! "बाप बड़ा ना भइया भइया सबसे बड़ा रुपइया।" लोग नास्तिकों को आस्तिक और आस्तिकों को नास्तिक कहकर उपहास करने में लगे हैं! हमारे देश के सर्वमान्य संत तुलसीदास ने कहा था—"जोग, जाप, तप, मंत्र, प्रभाऊ/फलिय तभी जब करिय दुराऊ।।" अर्थात जोग, जप, तप व मंत्र तभी प्रभावकारी होते हैं जब इन्हें गुप्त रूप से—बिना दिखावे के किया जाय! किन्तु आज सड़क घेरकर, बीच बाजार में तथा देवस्थानों पर ऊंची आवाज़ में टेप चला कर लोग नाचते हैं, भजनों की लाखों कैसेट व्यवसायिकता के लिए हमारी अन्तर्मुखी प्रवृति को दिखावे में बदल रही हैं! अपने देश की संस्कृति को भूलकर हम "बाहर कुछ और अन्दर कुछ" की ओर बढ़ रहे हैं "घर में बीबी झोंके भाड़, बाहर मीयां सूबेदार।"

सार-संक्षेप : गहराई से देखने पर—ऐसा नहीं है कि भारत वासियों में कोई आधार भूत कमी है! यही प्रतिभावान भारतवासी 'अमेरिका' में जाकर भारत की बुद्धिमत्ता, निष्ठा व कार्य कुशलता का झंडा फहरा रहे हैं, यही भारतवासी मजदूरी के लिए 'फिजी' जाकर अपनी कामयाबी की मिसाल बन रहे हैं, परंतु भारत में भारतवासी कुछ अज़ीब दौर से गुज़र रहे हैं! यहां इनका अंध-विश्वास, इनका आलस्य, इनकी संकीर्णता, इनकी विकृत मानसिकता इन्हें घेरे रहती हैं। गरीब अमीर, मजदूर किसान, वैज्ञानिक, दुकानदार उद्योगपति, शिक्षक, पुरोहित, नेता अभिनेता—सभी मानो भटके-भटके चल रहे हैं! जनता चमत्कार की उम्मीद लगाए बैठी है! शासन तसल्ली की गोलियां होलसेल में बांट रहा है! फरेब की तूती बोल रही है! आज

अहिंसा में हिंसा छिपी है, त्याग में स्वार्थ छिपा है, सादगी में छल छिपा है, मीठी बो
बनावट छिपी है, मुस्कान में क्रोध छिपा है, पूजा में लालच छिपा है, आराधना में डर
है!

वर्तमान समस्या का हल केवल एक है—अशिक्षा व ग़रीबी को दूर करना! ज्ञा
दीप जलाकर, निर्भयता का पाठ पढ़ाकर, न्याय का मार्ग दिखाकर, जीवन का मर्म सम
ही भारतवासियों के लिए एक बार फिर भारत को उस स्वर्ग का प्रतीक बनाया जा
है, जिसके लिये कहा गया है : "जननी जन्म भूमिश्च, स्वर्गादपि गरीयसी।" इसके लिए
चाणक्य का नेतृत्व चाहिये, जो फटी कंबल ओढ़कर सो सके, जिसका लक्ष्य अपना सुख
देश का हित बन सके! इसके लिए कोई सुकरात चाहिये जो सत्य के लिये ज़हर पी
तैयार हो, इसके लिए कोई गुरु गोविन्दसिंह चाहिए, जो अपने परिवार की बलि देने को
होर! यह धरती आज त्याग, बलिदान व उसके लिए साहस मांगती है! भारत के लिए
भारतवासी को ही सामने आना होगा—सत्य का उद्घोष करने के लिए—अन्याय का प्र
करने के लिए, सोई जनता को जगाने के लिए!

कतरा दरिया में मिल जाए तो दरिया हो जाए।
काम अच्छा है वह जिसका कि मआल अच्छा है।

—मिर्जा गालिब

विज्ञान केवल मातृ-भाषा में ही पढ़ाया जाना चाहिए

डॉ. जयंत नार्लीकर

हमारे समाचार पत्रों में विज्ञान के बारे में काफी आ सकता है। मैंने देखा कि इस बारे में 'महाराष्ट्र टाइम्स' जो एक मराठी पत्र है, में विज्ञान के बारे में एक दिन-बुधवार को काफी लिखा जाता है। जो महराष्ट्र टाइम्स ने कर दिखाया वह 'नवभारत टाइम्स' ने नहीं किया। 'नव भारत' या 'जनसत्ता' जैसे समाचार पत्रों को ऐसा करने में कोई दिक़्क़त नहीं होनी चाहिए कि विज्ञान के बारे में एक पन्ना उसमें रहे, सप्ताह में किसी एक दिन। इस तरह से हम विज्ञान को बहुत लोगों तक पहुंचा सकते हैं। आप जानते हैं कि हिंदी अखबार अधिक पढ़ा जाता है अंग्रेजी अखबार की अपेक्षा, तो क्यों न इसका फ़ायदा उठाया जाए और विज्ञान को अधिक लोगों तक क्यों न पहुंचाए। और एक शक्तिशाली माध्यम है रेडियो और टेलीविज़न का। इसके बारे में अपना अनुभव बताता हूँ। दो-तीन साल पहले टी.वी. पर कार्ल सेगन 'कासमास' नामक एक कथा मालिका हर रविवार को दिखाई जाती थी। इस मालिका को पहले तीन चार मिनटों में, मैं हिंदी में प्रस्तुत करता था। इसका उद्देश्य यह था कि प्रोग्राम में आप क्या सुनेंगे और देखेगें, इसका संक्षिप्त विवरण दर्शकों को दिया जाए तो वे अच्छी तरह से समझ लेंगे। इसी उद्देश्य से मुझसे कहा गया कि दो-तीन मिनटों में प्रत्येक प्रोग्राम की मैं थोड़ी जानकारी, झलक दूं। जब प्रोग्राम मालिका पूरी हुई तो मुझे कई दर्शकों के पत्र मिले। उन्होंने लिखा था कि जो माध्यम अंग्रेज़ी के कासमास का था, वह अच्छी तरह से समझ नहीं आया, लेकिन हिंदी में शुरू में जो बताया गया, उसके कारण प्रोग्राम हम अच्छी तरह से समझ सके। इसका मतलब है कि हमारे देश के अधिकांश दर्शक मुंबई, कलकत्ता जैसे शहरों को छोड़कर, लेकिन जहां आजकल टी.वी. पहुंच रहे हैं वहां हिंदी भाषा-भाषी होते हैं या हिन्दी समझते हैं। इसलिए हिंदी में टी.वी. के लिए विज्ञान पर अच्छे कार्यक्रम बन सकते हैं। इस दिशा में 'कासमास' के अनुभव के बाद मेरा एक प्रयत्न रहा कि हिंदी में भी वैसी एक चित्र माला बननी चाहिए और वैसी अब बन भी रही है फ़िल्म्स डिवीज़न द्वारा। 30 किस्तों की एक मलिका 'ब्रह्मांड' शीर्षक से बन रही है। अभी कुछ महीने और लगेंगे। मुझे आशा है कि हिंदी माध्यम से इस प्रकार के जो कार्यक्रम टी.वी. पर दिखाए जाएंगे, उनसे लोगों को विज्ञान के बारे में अधिक ज़ानकारी मिल पाएगी। अब सवाल आता है, विज्ञान के प्रसाद में कौन-कौन हाथ बंटा सकते है। सामान्य रूप से लोग कहते हैं कि यह काम वैज्ञानिकों का है। वैज्ञानिक कहते है कि हमारा काम अपनी प्रयोगशाला में जाकर शोध करना है या अपने छात्रों को पढ़ाना है अगर हम ऐसा काम करने लगे तो हमारा जो अनुसंधान काम है वह आगे नहीं बढ़ पाएगा। लेकिन मैं ऐसी बात नही मानता। वैज्ञानिक को खुद अपने अनुसंधान द्वारा अन्वेषण द्वारा जो अपने ज्ञान की वृद्धि करने का मौका मिलता है, उसके अलावा विज्ञान और लोगों को पढ़ाने से भी मिलता है। जब हम किसी व्यक्ति को कोई बात समझाना चाहते हैं तो वह प्रश्न पूछता है, उन प्रश्नों के उत्तर देते समय हम उसे विषय को अच्छी तरह से समझ सकते हैं। कोई कितना भी बड़ा पंडित क्यों न हो, वह अगर और लोगों

को अपना ज्ञान समझाना चाहता है तो उससे उसके अपने ज्ञान में भी वृद्धि होती है, इसीलिए वैज्ञानिकों को चाहिए कि विज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए अपने समय का कुछ अंश दें।

विज्ञान के प्रसार में साहित्यिकों को भी आगे आना चाहिए। उनकी लेखनी में वैज्ञानिकों की अपेक्षा अधिक ताक़त होती है। मैं विज्ञान पर लेख लिख सकूंगा, लेकिन मेरी हिंदी इतनी अच्छी नहीं होगी, जितनी एक प्रतिष्ठित साहित्यकार की होगी। जिसकी लेखनी में इतना दम है उसे चाहिए कि विज्ञान के बारे में लोगों को कुछ समझाए। आप कहेंगें कि साहित्यिक लोग समझते हैं कि विज्ञान तो बहुत कठिन है "हम इसे समझ नहीं सकते है, लोगों को क्या बताएंगें", लेकिन ऐसी कोई बात नहीं है। अगर ऐसा प्रयास करें तो कुछ विज्ञान-कथा के माध्यम से लोगों के सामने ला सकेंगे। इस बारे में किसी वैज्ञानिक से सहायता ले सकते हैं। वे किसी वैज्ञानिक से चर्चा करें कि मेरे मन में ऐसा विचार आया है, तो वैज्ञानिक बता सकते हैं कि बात सही है या नहीं, उसमें क्या सुधार करना चाहिए। इस प्रकार से एक नए प्रकार के साहित्य का निर्माण हो सकता है। ऐसे नए साहित्य द्वारा हिंदी का भी विकास होगा। विज्ञान-साहित्य जो अंग्रेजी और अन्य विदेशी भाषाओं में काफी विकसित हो चुका है। हमें ऐसा साहित्य अपनी भाषाओं में लाना चाहिए। इसके लिए मैं मान्य साहित्यिकों से यह कहूंगा कि आप लोग विज्ञान कथाएं लिख पाएंगे। साहित्यिकों से मैं यह भी कहूंगा कि अन्य अन्य साहित्यिक रूपों से विज्ञान कथाओं को कुछ भी कम मत समझिए। यह मत समझिए कि जो साइंस के बारे में लिखा है, वह असली साहित्य नहीं है। वह भी साहित्य का महत्वपूर्ण अंश हो सकता है।

आज हम लोग 21वीं सदी की बात कर रहे हैं तो 21वीं सदी विज्ञान युग से ही जानी जाएगी। 20वीं सदी को ही हम विज्ञान युग कहने लगे हैं। किसी भी भाषा की जो समृद्धि है, वह तत्कालीन सामाजिक परिवर्तन होते है उसका चित्रण कर सकती है—इस पर उस भाषा की समृद्धि निर्भर रहती है और अगर हम विज्ञान युग में प्रवेश कर रहे हैं तो इसकी कुछ झलक हमें अपनी भाषा में दिखानी चाहिए। इसलिए हिंदी को इस क्षेत्र में अधिक आगे बढ़ने की आवश्यकता है।

क्षेत्रीय भविष्य निधि आयुक्त का कार्यालय, इंदौर द्वारा प्रकाशित निधि के जन-दिस. 99 अंक से साभार

रहिमन वे नर मर चुके, जो कहुँ मांगन जाहिं।
उनते पहले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं।।

—रहीम

1368 HA/2000—4A

डायबिटीज़ के साथ सामान्य जीवन

डॉ. बीरसिंह

जब किसी को बताया जाता है कि उसे डायबिटीज की बीमारी है तो वह लगभग सकते में आ जाता है। ज़हन में बरबस ही कुछ पाबन्दियाँ कौंध जाती हैं। यह सोचकर दिल उदास हो जाता है कि अब बाकी का जीवन मीठा न खा सकने और अन्य सैंकड़ों ऐसी ही पाबन्दियों के साथ गुजारना पड़ेगा! कितना अनुचित है ऐसा सोचना! विश्वास कीजिए, डायबिटीज़ अर्थात् मधुमेह की बीमारी के रहते हुए भी आप एक सामान्य, स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सकते हैं। उससे भी उत्साहवर्धक बात तो यह है कि अधिकतर मामलों में आप इस बीमारी से बचे रह सकते हैं। आइए, इस बीमारी के बारे में कुल मूल बातें जानें।

डायबिटीज़ क्या है?

प्राचीन काल से इस रोग को भारत में पहचाना गया है और हमारे अपने आयुर्वेद में इसे आदिकाल से ही 'मधुमेह' का नाम दिया गया था। मधुमेह का अर्थ है पेशाब में मीठा जाना। आधुनिक चिकित्सा प्रणाली ने तो इस लक्षण को बहुत बाद में पहचाना और इसकी विस्तार से व्याख्या की। आम व्यक्ति इसे 'शूगर की बीमारी' नाम से भी जानता है।

वास्तव में डायबिटीज़ एक बीमारी नहीं है बल्कि कई बीमारियों का एक समूह है जिनमें साझी विशेषता यह है कि रक्त में ग्लूकोज़ नामक एक शक्कर की मात्रा काफी अधिक हो जाती है। इसके साथ मूत्र में भी यह ग्लूकोज जाने लगता है और रोगी में डायबिटीज़ के लक्षण पैदा हो जाते हैं।

हमारा भोजन पाचन क्रिया के माध्यम से कई पोषक तत्वों में संश्लेषित हो जाता है। इन्हीं तत्वों में से एक है ग्लूकोज़ जो शरीर में ताकत (एनर्जी) देने का एक मुख्य स्रोत है। रक्त में उपस्थित ग्लूकोज़ पूरे शरीर में संचरण क्रिया के माध्यम से शरीर के विभिन्न अंगों में पहुँचता है और उन अंगों की कोशिकाएं इसका प्रयोग करके ऊर्जा अर्थात् एनर्जी पैदा करती हैं।

कोशिकाएं ग्लूकोज़ को अपने अंदर प्रवेश करा सके, इसके लिए 'इंसुलिन' नामक हार्मोन अति आवश्यक है। पेट में आमाशय के पीछे स्थित एक अन्तःस्रावी (एन्डोक्राइन) ग्रंथ—अग्न्याशय (पैंक्रिआज)—द्वारा इस हॉर्मोन का निर्माण होता है। यदि किसी कारणवश अग्न्याशय पर्याप्त मात्रा में इंसुलिन का निर्माण नहीं कर पाता है या उपस्थित इंसुलिन शरीर की कोशिशकाओं में ग्लूकोज़ का प्रवेश कराने में असमर्थ है तो रक्त में ग्लूकोज़ की मात्रा बढ़ती जाती है। परिणाम स्वरूप, शरीर ग्लूकोज़ का प्रयोग नहीं कर पाता है। लगभग कुछ

1368 HA/2000—4B

ऐसी ही स्थिति हो जाती है कि चारों ओर जल परंतु पीने के लिए एक भी बूंद नहीं!

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार यदि किसी व्यक्ति का, खाली पेट अवस्था में रक्त लेकर उसकी ग्लूकोज़ की मात्रा मापी जाए और वह 120 मि.ग्रा. प्रति 100 मि.ली. से अधिक है या फिर 75 ग्राम ग्लूकोज़ पाऊडर खिलाने के 2 घंटे बाद रक्त ग्लूकोज़ 180 मि.ग्रा. प्रति 100 मि.ली. से अधिक है तो उसे डायबिटीज़ है।

डायबिटीज़ कोई संक्रामक रोग नहीं है। इसका अर्थ है कि आपको यह किसी अन्य व्यक्ति से नहीं हो सकता है और न ही आप इसे अन्य व्यक्ति को फैला सकते हैं। यह रोग किसी भी आयु में हो सकता है।

व्यापकता

डायबिटीज़ की बीमारी काफी व्यापक है। अमेरिका जैसे विकसित देश में इसे मृत्यु का चौथा मुख्य कारण माना जाता है। हमारे देश में अनुमानतः कुल जनसंख्या के लगभग 1.75 प्रतिशत (लगभग 2 करोड़) लोगों को यह बीमारी है। ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में शहरी क्षेत्रों में यह अधिक व्यापक है। भविष्य में डायबिटीज़ कीं समस्या के बढ़ने की काफी आशंका है।

डायबिटीज़ के लक्षण

अनेक मामलों में रोगी को कोई लक्षण महसूस नहीं होते हैं और दिल का दौरा, उच्च रक्त चाप आदि होने पर जब रक्त में ग्लूकोज़ मात्रा की जाँच की जाती है तो इसका पता चलता है। कई बार सामान्य मेडिकल चेकअप में इसक पता चलता है।

जो लक्षण होते हैं तो उनका भी स्वरूप अलग-अलग होता है। निम्नलिखित लक्षणों में से कोई भी लक्षण डायबिटीज़ का संकेतक हो सकता है : अत्यधिक भूख लगना, पेशाब का बार-बार व अधिक आना, अधिक प्यास लगना, थकावट व कमजोरी महसूस होना या त्वचा पर हुए ज़ख्म का बहुत समय में भरना।

जनन अंगों में खुजली, चश्मे का नम्बर जल्दी-जल्दी बदलना, पुरुषों में नपुंसकता व शीघ्रपतन की शिकायत तथा महिलाओं में भारी वजन के बच्चे पैदा होना, बार-बार गर्भपात होना भी डायबिटीज़ का शक पैदा करता है।

कई बार ऐसा भी होता है कि रोगी सीधा ही डायबिटीज़ के कारण बेहोशी की अवस्था में पहुंच जाता है और जांच करने पर डायबिटीज़ का पता लगता है। कई रोगी दिल का दौरा या गुर्दे खराब होने जैसी बीमारियों के लक्षण लेकर प्रस्तुत होते हैं और उनमें डायबिटीज़ को इनके लिए जिम्मेवार माना जाता है।

क्यों हो जाती है डायबिटीज़ ?

कुछ विशेष 'जीन्स' की उपस्थिति के कारण, मुख्यतः आनुवंशिकता को इस रोग के लिए जिम्मेवार माना जाता है अर्थात् यह एक पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वली बीमारी है। यद्यपि इसके प्रकट होने की आयु कुछ भी हो सकती है। मोटापा, आराम की ज़िन्दगी बसर करना, अग्न्याशय के कुछ रोग व कुछ औषधियाँ भी डायबिटीज़ का कारण मानी गई हैं। तनाव डायबिटीज़ को प्रकट होने में सहायक होता है। जिन महिलाओं को डायबिटीज़ की प्रवृत्ति होती है, अक्सर गर्भावस्था में उनमें यह प्रकट हो जाती है।

मुख्यतः डायबिटीज़ तीन प्रकार की होती है–

(i) इंसुलिन निर्भर डायबिटीज़ (इंसुलिन डिपेन्डेंट डायबिटीज़)–इसे टाइप I डायबिटीज़ भी कहते हैं। अक्सर ही यह छोटी आयु में प्रकट हो जाती है। ऐसे रोगी कम आयु के व पतले-दुबले होते हैं। रक्त में ग्लूकोज की मात्रा नियंत्रित करने के लिए ये रोगी बाहर से दी गई इंसुलिन पर निर्भर होते हैं तथा मुख से दी गई दवाइयों से इनका रक्त ग्लूकोज़ नियंत्रित नहीं होती है।

(ii) इंसुलिन अनिर्भर डायबिटीज़ (नॉन इंसुलिन डिपेन्डेंट डायबिटीज़ या टाइप II डायबिटीज़)–अधिकतर मामलों में यह 40 वर्ष की आयु के बाद प्रकट होती है। ऐसे रोगी प्रायः मोटे होते हैं और इनमें रक्त ग्लूकोज़ की मात्रा नियंत्रित करने के लिए मुखीय ग्लूकोज़ नियंत्रक दवाइयाँ व आहार नियंत्रण पर्याप्त होता है।

(iii) गर्भावस्था जनित डायबिटीज़ (जेस्टेशनल डायबिटीज़)–गर्भावस्था में यह प्रकट होती है और प्रसव के बाद स्वतः ठीक हो जाती है। बाद में ऐसी महिलाओं को टाइप II डायबिटीज़ होने की संभावना काफी प्रबल होती है।

डायबिटीज़ होने पर क्या करें ?

चूंकि अधिकतर रोगियों में इसका कारण आनुवंशिक होता है, इसलिए डायबिटीज़ का उपचार तो संभव नहीं है परंतु कुछ साधारण उपायों से इसे भली भांति नियन्त्रण में रखकर सामान्य जीवन बिताया जा सकता है। डायबिटीज़ के नियन्त्रण के लिए आवश्यक है अपने चिकित्सक द्वारा बताए गए सभी निर्देशों का कड़ाई से पालन करना, दी गई दवाइयों को निर्देशानुसार समय पर व नियमित रूप से लेना, आहार पर नियंत्रण करना, नियमित रूप से शारीरिक व्यायाम करना तथा अपने वजन को काबू में रखना। कुछ मुख्य बातों की यहाँ चर्चा की जा रही है–

(क) पूरी जाँच

डायबिटीज़ का निदान होने पर अपनी पूरी शारीरिक जांच व कुछ आवश्यक प्रयोगशाला टेस्ट कराएं। डायबिटीज़ एक ऐसी बीमारी है जिसका अर्थ केवल उच्च रक्त ग्लूकोज़ ही नहीं है।

यह बीमारी हृदय, रक्त-वाहिनियों, आँखों, गुर्दों व तंत्रिका तंत्र पर काफी दुष्प्रभाव डालती है और हृदयाघात, उच्च रक्तचाप, अंधापन, गुर्दों का फेल हो जाना, पक्षाघात (स्ट्रोक) आदि जैसी जटिलताएं उत्पन्न कर देती है।

इस प्रकार डायबिटीज़ के कारण शरीर के विभिन्न अंगों पर अब तक हुए दुष्प्रभावों का आंकलन किया जा सकता है और आवश्यकता अनुसार उनका उपचार शुरू किया जा सकता है।

गुर्दे के परीक्षण, रक्त-परीक्षण, ई.सी.जी., आँखों की फन्डोस्कोपी, रक्त में वसा (जैसे कोलेस्ट्रॉल) का स्तर, रक्तचाप का नापना आदि इन जाँचों में सम्मिलित हैं।

भविष्य में भी इस प्रकार की जांच वर्ष में एक बार अवश्य कराएं।

(ख) दवाइयां

आजकल डायबिटीज़ के नियन्त्रण के लिए इन्सुलिन इन्जैक्शन के विभिन्न प्रकार तथा मुखीय दवाइयां उपलब्ध हैं। ये दवाइयाँ हमेशा अपने चिकित्सक के निर्देशानुसार ही लें व इनका प्रयोग नियमित रूप से, अनुशासन व कड़ाई से करें। अनेक रोगी अपने आप ये दवाइयां लेना बंद कर देते हैं यह कहकर कि "आज तो मेरा रक्त ग्लूकोज़ ठीक महसूस हो रहा है"! ऐसा करना घातक सिद्ध हो सकता है।

रक्त ग्लूकोज़ व मूत्र में ग्लूकोज़ की मात्रा मापना सीखें। आजकल ऐसी पूर्वनिर्मित स्ट्रिप्स उपलब्ध हैं जिन्हें रोगी स्वयं प्रयोग करके अपनी रक्त व मूत्र ग्लूकोज़ माप सकता है।

चिकित्सक के निर्देश के अनुसार इन्हें मापें व इनका उचित रिकार्ड रखें। इससे चिकित्सक को आपकी इंसुलिन व मुखीय दवाइयों की खुराक को समायोज्य करने में सहायता मिलेगी।

सामान्य, स्वस्थ व लम्बा जीवन बिताने के लिए रक्त ग्लूकोज़ का नियन्त्रण में रहना अति आवश्यक है।

(ग) आहार-नियन्त्रण

डायबिटीज़ को उचित नियन्त्रण में रखने के लिए आहार की अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका है।

अपने चिकित्सक से अपने लिए एक आहार तालिका बनवा लें। यह आहार तालिका

आपके शारीरिक वज़न व आपकी कैलोरी की दैनिक आवश्यकता को ध्यान में रखकर बनाई जाती है ताकि आपका वजन व रक्त ग्लूकोज़ नियन्त्रण में रहे। इस तालिका का कड़ाई से पालन करें। आपका आहार ऐसा होना चाहिए जो आपको सभी आवश्यक पोषक तत्व उचित मात्रा में दे। **एक डायबिटीज़ रोगी के आदर्श आहार में अधिकतर मात्रा अनाजों, दालों सब्जियों की होनी चाहिए; थोड़ी-सी मात्रा चिकनाई रहित दूध व दूध उत्पादों की, मछली व चिकन की हो सकती है।** कुछ चुने हुए फल लिए जा सकते हैं परन्तु **तेल, घी, मक्खन, मिठाइयाँ व चीनी या तो बिल्कुल न लें या फिर बहुत ही कम। आहार-तालिका में कुछ भोज्य पदार्थों को एक दूसरे से बदला जा सकता है ताकि विभिन्नता बनी रहे।** उदाहरणतया मध्यम आकार की **1 चपाती के स्थान पर एक कटोरी पका हुआ चावल या एक इड़ली या आधा कप पका हुआ दलिया या डबल रोटी की एक स्लाइस ली जा सकती है।**

चूंकि अक्सर रोगी को भोजन के बाद भी भूख लगती है, ऐसे में **खीरा, पत्ता-गोभी, प्याज, टमाटर,** शिमला-मिर्च, मूली, बिना चीनी चाय या कॉफी, बिना चीनी का नींबू पानी आदि जैसे पदार्थों का जी भरकर प्रयोग किया जा सकता है। आम, चीकू, अंगूर, केला, सेब जैसे फल तालिका के अनुसार ही प्रयोग करें, अन्यथा नहीं।

डायबिटीज़ के रोगी को उपवास नहीं करना चाहिए। यदि धार्मिक कारणों से ऐसा करना ही पड़े तो यह केवल आंशिक उपवास ही होना चाहिए।

यदि किसी शादी-ब्याह या पार्टी में आपको जाना है तो वहाँ भी भोजन सादा ही खाइए। तली हुई चीजों, क्रीम व मीठे से दूर ही रहिए।

आहार के सन्दर्भ में एक सावधानी और। यदि आपने एक समय के भोजन में कम खाया है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि उसके बाद के खाने में अधिक खाने की छूट है। केवल निर्धारित मात्रा का ही हर आहार में सेवन करें।

(घ) व्यायाम व जीवन शैली में परिवर्तन

व्यायाम नियमित रूप से करें परंतु अपने आपको अधिक नहीं थकाएं। व्यायाम करने से रक्त ग्लूकोज़ की मात्रा कम होती है और शरीर का वज़न भी काबू में रहता है। ध्यान रखिए कि यदि आपको कोई अन्य बीमारी हो जाए (जैसे—बुखार आदि) तो उन दिनों व्यायाम न करें। यदि रक्त ग्लूकोज़ की मात्रा बहुत अधिक है तो भी उन दिनों में व्यायाम न करें।

जीवन को सुचारू बनाएं। अनावश्यक तनाव से बचें। डायबिटीज़ के रोगियों को धूम्रपान व मदिरापान की बिल्कुल इजाजत नहीं है। इनसे निश्चित रूप से बचें। जीवन के प्रति सकारात्मक रवैया अपनाएँ।

(ङ) पैरों की देखभाल

डायबिटीज़ के रोगियों के लिए अपने पैरों व नाखूनों की देखभाल अत्यावश्यक है। तंग जूते न पहनें। जुराबें भी आरामदायक, सूती व पसीना सोखने वाली होनी चाहिए। जब भी संभव हो, जूते व जुराबें उतार कर पैरों को आराम दें। चोट व कटावों से पैरों को बचाएं। **समय-समय पर पैरों का बारीकी से मुआयना करें।** यदि छोटा-सा भी ज़ख्म आदि दिखाई दे तो तुरन्त उसका उचित उपचार कराएं। नाखून काटते समय भी ध्यान रखें कि त्वचा न कट जाए। कटने से बचाव आवश्यक है।

उचित ध्यान न देने के कारण छोटे-ज़ख्म भी भयंकर रूप धारण कर सकते हैं। कभी-कभी तो पैर को काटने की भी नौबत आ जाती है। इसलिए नंगे पैर कभी न चलें। पावों में छाले न पड़ने दें।

(च) अन्य सावधानियां

अपने पास अपने प्रयोग की डायबिटीज़ की सभी दवाइयां पर्याप्त मात्रा में हमेशा रखें। यह और भी जरूरी हो जाता है जब आप घर से बाहर जा रहे हों। नए स्थान पर आपको दवाई न भी मिले, ऐसा हो सकता है। यह स्थिति आपके लिए अच्छी नहीं होगी।

अपने पास हमेशा एक कार्ड रखें जिस पर आपका नाम, पता, फोन नं. आदि लिखे हों तथा साथ में यह जानकारी भी होनी चाहिए कि आप डायबिटीज़ के रोगी हैं व कौन-कौन सी दवाइयाँ ले रहे हैं। किसी कारण बेहोश हो जाने पर यह सारी जानकारी अनजान जगह पर भी आपके लिए जान बचाने वाली सिद्ध हो सकती है।

टाइप I डायबिटीज़ के रोगियों को सदैव अपने पास चीनी या गुड़ जैसी कोई चीज रखनी चाहिए जिसको ऐसी आपातकालीन स्थिति में प्रयोग किया जा सकता है जब रक्त ग्लूकोज़ कम हो जाने के कारण बेहोशी आ जाए।

***बचाव :** डायबिटीज़ के बचाव के लिए अपना वजन नियंत्रण में रखिए। यदि आप 40 वर्ष से अधिक आयु के हैं तो वर्ष में एक बार अपनी रक्त ग्लूकोज़ की जांच कराएं। आहार नियंत्रण व नियमित व्यायाम करिए। धूम्रपान व मदिरापान से बचें। यदि आपके परिवार में किसी सगे जन को डायबिटीज़ का इतिहास है तो आपको और भी सावधान रहने की आवश्यकता है।

एडिशनल प्रोफेसर, सेंटर फार कम्युनिटी मेडिसिन, अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली–110029

21वीं सदी में मानव संसाधन विकास

डॉ. मनोज कुमार अम्बष्ट

19वीं सदी के प्रारम्भ में इंगलैंड में औद्योगिक क्रांति के पूर्ण रूप लेने के साथ मानव और यंत्र के बीच महत्ता एवम् अस्तित्व की जंग छिड़ गई, जिसका निर्णय तो कभी न हो सका पर मनुष्य आविष्कार तथा नियंत्रक होने के कारण अपनी श्रेष्ठता बनाए रखने में भले ही सफल हो गया लेकिन उसकी उपस्थिति लगातार हाशिए की ओर सिमटती गई। इसी बीच 20वीं सदी के मध्य में कम्प्यूटर के जन्म ने मनुष्य को सुगम, तत्काल और त्वरित विकास प्रदान कर मानो एक क्रांति ही ला दी। परंतु इस कारण मानव की भूमिका को आज पुनः परिभाषित करने की आवश्यकता आ पड़ी है। सूचना प्रौद्योगिकी ने समस्त भौगोलिक सीमाओं को दरकिनार करते हुए वैश्वीकरण को बल प्रदान किया है।

21वीं सदी की कल्पना सूचना प्रौद्योगिकी क बिना नहीं की जा सकती। अभी हाल ही में जब 'वाई-2 के' की समस्या का ख्याल आया तो उससे निपटने के लिए पूरी दुनिया के लोग एकजुट हो गए और उसके समाधान के लिए अनुसंधान पर अरबों डॉलर खर्च किए गए। पहली जनवरी 2000 की खुशी नई सहस्राब्दि का तथाकथित प्रारम्भ मात्र ही नहीं, वरन् 'वाई-2 के' की समाधान की भी खुशी थी, जिसके बिना कल्पना कीजिए कि सारे विश्व में क्या होता! पर इस समस्या का हल "तुम्हीं ने दर्द दिया है, तुम्हीं दवा देना" की तर्ज पर आदमी ने ही किया।

मानव संसाधन विकास

21वीं सदी में संगठन के रूप तथा कार्यरत मानवशक्ति में परिवर्तन का मुख्य कारण तथा आधार सूचना प्रौद्योगिकी ही होगी, इससे मुंह मोड़ा नहीं जा सकता। इस प्रकार अर्थव्यवस्था भी विशाल निमात्री अर्थव्यवस्था से ज्ञानाश्रित अर्थव्यवस्था की ओर करवट लेगी। अतः नई अर्थव्यवस्था जटिल एवम् उच्च दक्षतापूर्ण कार्यों को रूप देने वाले ज्ञानकर्मियों की ओर अग्रसर होगी। अतः सफेद कॉलर वाली नौकरियों में अत्यधिक वृद्धि तथा नीले कॉलर वाली नौकरियों में कमी होगी। महिलाओं में शिक्षा की वृद्धि तकनीकी एवम् व्यावसायिक शिक्षा में पहले से अधिक भागेदारी, आर्थिक स्वावलंबन नौकरी के प्रति रूझान, एकल तथा छोटा परिवार जैसे अन्य सामाजिक और आर्थिक कारणों से कार्यशक्ति में इनकी भागेदारी पहले से कहीं अधिक बढ़ेगी। सूचना प्रौद्योगिकी में आई क्रांति के कारण संगठन की सीमाएं इसकी चारदीवारी को लांघ कर कर्मचारियों के घर तक भी पहुंचेगी, जहाँ से वे संगठन के कार्य को बखूबी अंजाम दे सकते हैं। इससे संगठन के कार्य को बेहतर निपटाते हुए वे अपने परिवार को भी अधिक समय दे सकते हैं। यह भी संभव है कि कार्य की प्रवृत्ति को देखते हुए लोग संगठन में

प्रतिदिन तीन-चार घंटे ही कार्य करें और शेष समय में उन्हें दूसरे संगठन या संस्था में कार्य करना पड़े। उदारीकरण तथा वैश्वीकरण के कारण संगठन में मिश्रित संस्कृति के लोग भी कार्य कर सकते हैं। और ऐसे वातावरण के लिए मनुष्य और संगठन दोनों को तैयार रहना होगा। इन सभी परिस्थितियों और चुनौतियों का सामना करने के लिए एक सशक्त मानव संसाधन विकास नीति की आवश्यकता होगी, जो कि संगठन के विकास में सतत प्रयत्नशील, सार्थक तथा सहयोगी सिद्ध हो सके। इसके लिए निम्नांकित बिंदुओं पर चर्चा करना अपेक्षित होगा—

1. मानव पशक्ति नियोजन—मानवशक्ति नियोजन का संबंध संगठन में कार्यरत कार्मिकों के सदुपयोग की व्यवस्था तथा भविष्य में संगठन की आवश्यकता के अनुरूप उसे पूरा करने में प्रयास से है। यह सत्य है कि कम्प्यूटर तथा सूचना प्रौद्योगिकी के प्रयोग से संगठन में मानवों की संख्या में तेजी से कमी आएगी पर उनका अधिकतम सदुपयोग ही संगठन तथा उनकी स्मृद्धि के लिए आवश्यक है।

2. कार्य विश्लेषण, कार्य विवरण एवं कार्य विशिष्टीकरण—संगठन में कार्मिकों की संख्या घटने के साथ ही उनकी गुणवत्ता का महत्व पहले से बढ़ जाता है। कार्य विश्लेषण तथा कार्य विवरण के आधार पर कार्य विशिष्टीकरण आज पहले से अधिक महत्वपूर्ण है ताकि सुयोग्य तथा विशिष्ट व्यक्ति ही कार्य विशेष का सम्पादन कर सकें। जहाँ पर अधिक संख्या में कर्मचारी कार्यरत हों वहाँ कुछ साधारण कर्मचारियों से काम लिया जा सकता है और यह भी संभव है कि संगठन पर उसका प्रतिकूल प्रभाव पड़े, पर जहां मुट्ठी भर लोग ही कार्य करते हों वहाँ यदि उचित व्यक्ति उचित कार्य को सम्पादित न करें तो संगठन की क्या हालत होगी, इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है।

3. भर्ती तथा चयन—भर्ती के पारम्परिक तरीकों के अलावा अब फैक्स तथा इलेक्ट्रॉनिक मेल के माध्यम से भी नियोक्ता द्वारा आवेदन-पत्र स्वीकार किए जा रहे हैं। रिक्तियों के लिए उम्मीदवार संबंधित कंपनी के वेबसाइट पर भी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। इंटरनेट के माध्यम से विभिन्न परीक्षाओं के परिणाम भी प्राप्त किए जा रहे हैं। कई बार नियोक्ता अथवा उसकी ओर से कार्य कर रहे एजेन्सी द्वारा प्राप्त आवेदनों में से छंटनी कर अथवा विभिन्न आधारों पर संख्या को न्यून कर संभावित उम्मीदवार का टेलीफोन के माध्यम से ही साक्षात्कार ले लिया जाता है और योग्य पाए जाने पर चयन की मौखिक सूचना भी दे दी जाती है। लगभग 1970 से भारत में प्रतियोगिता परीक्षाओं में वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर पुस्तिका के रूप में ओ.एम.आर. शीट का प्रयोग किया जाने लगा ताकि लाखों की संख्या में प्राप्त उत्तर पुस्तिकाओं को कम्प्यूटर के माध्यम से आसानी से जाँच कर परीक्षाफल तुरंत प्रकाशित किया जा सके। पर अब तो आवेदन-पत्र भी संस्था द्वारा निर्गत ओ. एम. आर. पत्र पर प्राप्त किया जा रहा है, जिसका कि कम्प्यूटर द्वारा आसानी से निपटारा किया जा सकता है तथा संबंधित फाइल तैयार की जा सकती है। इससे किसी खास बिंदु पर प्राप्त आवेदनों से छंटनी करने अथवा उम्मीदवारों की संक्षिप्त सूची बनाने या चयन करने में मात्र अंगुलियों

के सहारे चंद सेकेंडों में बड़ी मदद मिल जाती है। भारत जैसे देश में विशाल जनसंख्या के बीच सुयोग्य उम्मीदवारों का चयन एक लम्बी प्रक्रियावाला दुरुह कार्य भी है और चुनौती भी। पर संगठन सुयोग्य कार्मिकों पर ही टिका होता है।

4. प्रशिक्षण एवम् विकास—21वीं सदी में सूचना प्रौद्योगिकी के व्यापक स्तर पर प्रवेश के कारण अधिकांश संगठनों में यंत्रों से घिरा मानव यंत्रों को दिशा प्रदान करेगा। उन्हें मानवों से कम और यंत्रों का अधिक सामना करना होगा। वैश्वीकरण तथा इंटरनेट के कारण संगठन में मिश्रित संस्कृति की संभावना प्रबल है। ऐसे में संगठन के भीतर कार्मिकों के कर्म एवं व्यवहार को विकसित करना एक चुनौती होगी। विभिन्न तकनीकों में तेजी से हो रहे परिवर्तन विद्यमान ज्ञान को अपर्याप्त बना देंगे, पर यदि परिवर्तन सतत् नहीं है तो यह विद्यमान ज्ञान दक्षता तथा निश्चय को भी अप्रासंगिक बना देगा। इन सारी बातों को ध्यान में रखते हुए हम एक ही निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यह सर्वथा प्रासंगिक होगा कि हमारा लक्ष्य सतत् सीखने की प्रक्रिया हो। इसके लिए प्रशिक्षण तथा विकास कार्यक्रमों पर अधिकाधिक बल के साथ-साथ कार्मिकों में भी व्यक्तिगत स्तर पर सतत् अध्ययन एवं सीखने की प्रक्रिया का विकास करना होगा तथा संगठन को इसके लिए लोगों को प्रेरित एवं उचित रूप से पुरस्कृत करना होगा।

5. निष्पादित कार्य का मूल्यांकन तथा पारितोषिक—किसी भी संस्था में निष्पादित कार्य का मूल्यांकन आवश्यक होता है ताकि संबंधित स्थान पर कार्यरत व्यक्ति का मूल्यांकन हो सके तथा उसकी खामियां या खूबियां सामने आ सकें। निष्पादित कार्य के मूल्यांकन के आधार पर यदि कोई कमी विस्तृत रूप में उजागर होती है तो उस पर विचार कर प्रणाली में कमी को भी दूर किया जा सकता है। व्यक्तिगत कमियों की पुनरावृत्ति होने पर उन्हें लिखित रूप से सूचित कर उस कमी को दूर करने के लिए कहा जाता है। इस मूल्यांकन के आधार पर ही संबंधित व्यक्ति का भविष्य भी जुड़ा होता है तथा प्रोन्नति की संभावनाएं बनती हैं। कतिपय संगठनों में इसके आधार पर ही मौद्रिक या अन्य रूप से परस्कृत करने की व्यवस्था है। तथापि, अधिकांश स्थानों पर यह प्रोन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है। प्रोन्नति व्यक्तियों को नए कार्य करने तथा कार्य से संबंधित जोखिम उठाने के लिए भी प्रेरित करती है, वहीं प्रोन्नति न पाने की अवस्था में व्यक्ति प्रायः कुंठित हो जाता है और उसमें कार्य के प्रति शिथिलता घर कर जाती है। प्रोन्नति के अवसर तत्काल उपलब्ध न होने पर संगठन द्वारा सुयोग्य व्यक्तियों को दूसरे रूप से भी क्षतिपूर्ति की जा सकती है। अब तो यह भी संभावना व्यक्त की जा रही है कि सूचना प्रौद्योगिकी के अधिकाधिक प्रयोग से पदानुक्रम में कमी आएगी और संगठन का स्वरूप उदग्र से क्षैतिज की ओर अग्रसर होगा। इस तरह प्रोन्नति के अवसर में कमी आएगी और प्रतिभाशाली तथा संगठन के लिए अपरिहार्य कार्मिकों को संगठन में बनाए रखने के लिए दूसरे रूप से भरपाई करनी होगी। वस्तुतः संगठन में 'प्रयास-निष्पादन-पारितोषिक-संतुष्टि-अभिप्रेरणा' की एक कड़ी होनी चाहिए।

उपसंहार

21वीं सदी में सूचना प्रौद्योगिकी के अधिकाधिक प्रयोग के फलस्वरूप पारम्परिक मानव संसाधन तथा प्रबंधन दक्षता अर्थहीन परिलक्षित हो सकते हैं, क्योंकि कार्य एवम् संगठन की प्रवृत्ति इस प्रकार की होगी कि कार्य संगठन की सीमाओं को लांघने का प्रयास करेगा। विश्व व्यापीतंत्र (वर्ल्ड वाईड वेब) से लैस इस युग में प्रतिभा को आकर्षित करना, पालन (सुशिक्षित) करना तथा प्रतिधारण (बनाए रखना) करना सबसे बड़ी चुनौती होगी। ज्ञानोद्योग (नॉलेज इंडस्ट्री) के साथ-साथ अन्य संगठन भी ज्ञानकर्मियों के बदौलत ही टिके रह सकते हैं। संगठन में कार्यरत व्यवसायिकों के लिए कैरियर एवं अभिप्रेरणा से संबंधित कुशल रणनीति ही उन्हें बनाए रखने में समर्थ सिद्ध होगी। एक ओर जहां संगठन में कार्मिकों की संख्या न्यूनतम होने के संकेत हैं, वहीं दूसरी ओर अंशकालिक व्यावसायिकों/विशेषज्ञों के कार्य करने की संभावना भी बढ़ती है। ऐसी स्थिति में संगठन के चंद लोगों तथा बाजार से प्राप्त अंशकालिक स्वतंत्र व्यावसायिकों से एक साथ सर्वथा अपेक्षित एवं संतुलित सेवा प्राप्त करना सचमुच एक चुनौती है। अतः सूचना प्रौद्योगिकी तथा मानव में सामंजस्य स्थापित करते हुए 21वीं सदी में संगठन को सफलता के शिखर पर पहुंचाना मानव संसाधन विकास का कर्तव्य है और चुनौती भी।

भारतीय स्टेट बैंक, गया–823001 (बिहार)

संदर्भ

1. कार्मिक प्रबंध–डॉ. देवेन्द्र प्रताप नारायण सिंह
2. पर्सोनल मैनेजमेंट–अरुण मोनप्पा तथा मिर्जा एस. सैयादीन
3. करेंट इस्यूज़ इन पार्सोनल मैनेजमेंट–केन्ड्रीथ एम. रौलेंड तथा गेराल्ड आर. फेरिस
4. बिजनेस टूडे–7-21 जनवरी 1996
5. दी इंडियन जर्नल ऑव कॉमर्स, अक्टूबर-दिसम्बर 1998
6. बिजनेस टूडे, 7-21 जनवरी 2000

आलस्य भी एक प्रकार की हिंसा है।

—महात्मा गांधी

हिंदी के विकास में विदेशी विद्वानों की भूमिका

--प्रदीप कुमार अग्रवाल

बहुत से लोगों के लिए यह संभवतः एक आश्चर्य का विषय हो सकता है कि बीसवीं सदी में हुए हिंदी के अद्वितीय विकास में न केवल अहिंदीभाषी भारतीयों का अपितु कतिपय विदेशी हिंदी विद्वानों का भी अप्रतिम योगदान रहा है। हिंदी भाषा और साहित्य की चहुंमुखी समृद्धि में इनके भगीरथ प्रयास उल्लेखनीय हैं। भारत से बाहर विदेशों में जाकर जहाँ भी भारतीय बसे हैं, उन्होंने अपनी भाषा और संस्कृति को सहेज कर रखा है। हिंदी ने स्वयं भी अपनी लोकप्रियता के चलते राष्ट्रों की सीमाओं को पार किया है। विश्व के कई देशों में हिंदी जानने-बोलने वालों की खासी संख्या है। अनेक देशों में हिंदी के उच्च-स्तरीय अध्ययन के केंद्र हैं और इसी के साथ अनेक विदेशी विद्वानों का भी हिंदी भाषा और साहित्य से गहरा जुड़ाव रहा है।

संसार के अनेक देशों में सैकड़ों विदेशी हिंदी विद्वानों ने बहुमूल्य वैचारिक और सृजनात्मक साहित्य द्वारा हिंदी की श्रीवृद्धि की है। इस मधुर भाषा ने देशी और विदेशी के कटघरों को तोड़ा है और दुनिया भर में हिंदी प्रेमियों, हिंदी सेवियों और हिंदी विद्वानों के बीच एक अटूट संबंध विकसित किया है। यह भाषा सही अर्थों में भारतीय संस्कृति की सच्ची संवाहिका रही है। इस बात को जानना इसलिए भी जरूरी है ताकि हम अपने देश में अपनी भाषा और संस्कृति को एक नए गौरव के साथ देख सकें। प्रस्तुत लेख में कुछ चर्चित विदेशी हिंदी विद्वानों के हिंदी के विकास में योगदान का संक्षिप्त परिचय दिया गया है जो न केवल सुखद अनुभूतिपरक है अपितु अनुकरणीय भी है।

फादर कामिल बुल्के (बेल्जियम) : संत तुलसी के अवतार

भारतीय भाषा एवं संस्कृति के अनन्य उपासक फादर कामिल बुल्के ने हिंदी की जो सेवा की है उससे आज सारी दुनिया परिचित है। यह **रामकथा** के अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वान और अंग्रेजी-हिंदी शब्दकोश के सर्वाधिक लोकप्रिय प्रस्तोता रहे हैं। महाकवि तुलसीभक्त, धर्मयोद्धा और संत साहित्यकार फादर बुल्के का जन्म बेल्जियम के रम्सकपैले गाँव में एक सितंबर, 1909 को हुआ था। उन्होंने हजारीबाग के सीतागढ़ में पंडित बदरीदत्त शास्त्री से हिंदी और संस्कृत पढ़ी, 1940 में इन्होंने हिंदी साहित्य सम्मेलन की विशारद परीक्षा उत्तीर्ण की। 1947 में इन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम.ए. (हिंदी) किया और **रामभक्ति के विकास** विषय पर शोध कार्य आरंभ किया। 1950 में सेंट जेवियर कॉलेज, रांची में हिंदी विभागाध्यक्ष के रूप में उनकी नियुक्ति हुई। 1960 के बाद, उन्होंने अपना सारा ध्यान अनुसंधान और हिंदी सेवा पर केंद्रित रखा। उनका कार्य प्रमुखतः कोश-निर्माण, अनुवाद और शोध-कार्य से संबंधित है।

उनकी **रामकथा : उत्पत्ति और विकास** अपने विषय की एक अभूतपूर्व कृति है। उन्होंने कुल मिलाकर उन्तीस पुस्तकें और लगभग 60 शोध निबंध लिखे। कोश-निर्माण कार्य का सर्वोत्कृष्ट रूप **अंग्रेजी-हिंदी-कोश** में उपलब्ध है, अनुवाद का प्रांजल रूप **नया विधान** में देखा जा सकता है। सन् 1979 में उन्होंने **मानस-कौमुदी** के नाम से **मानस** के सर्वाधिक कवित्वपूर्ण और प्रतिनिधि प्रसंगों का संकलन प्रस्तुत किया।

उन्होंने मेटरलिंक के नाटक **ब्लू बर्ड** का **नीलपंछी** शीर्षक से हिंदी में सुन्दर अनुवाद किया। उन्होंने **द सेवियर** नामक पुस्तक तैयार की और बाद में उसका **मुक्तिदाता** नाम से हिंदी अनुवाद भी किया जो 1940 में प्रकाशित हुआ। इस विदेशी विद्वान ने भारत-भक्त बनकर रामकथा और संत तुलसीदास पर अपनी इतनी गहरी निष्ठा व्यक्त की कि लोगों को ऐसा लगने लगा कि फादर कामिल बुल्के कहीं तुलसीदास का अवतार तो नहीं है। भारत सरकार ने सन् 1974 में उन्हें **पदमभूषण** की उपाधि से सम्मानित किया। 17 अगस्त, 1982 को उनका निधन हो गया किंतु अपने प्रियजनों की स्मृति में वे बार-बार जन्म लेते हैं।

डॉ. आदोलेन स्मेकल (चेकोस्लोवाकिया) : प्रथम विदेशी हिंदी कवि

भारत में चेक गणराज्य के दूत रहे आदोलेन स्मेकल अपनी हिंदी कविताओं की वजह से भारत में आज एक सुपरिचित नाम है। सात समंदर पार विदेशी धरती पर जन्म लेकर भी निरंतर हिंदी भाषा में काव्य सृजन करने वाले इस चेक कवि का भारत की मिट्टी के साथ एक अटूट भावनात्मक संबंध रहा है और उनके शब्द-शब्द में हिंदी प्रेम रचा-बसा हुआ है। उनके आठ कविता संग्रह हिंदी की में प्रकाशित हो चुके हैं। 18 अगस्त, 1928 को चेकोस्लोवाकिया के आलोमोडल्स नगर में जन्मे डॉ. स्मेकल ने चार्ल्स विश्वविद्यालय से एम. ए. (हिंदी) किया। उन्होंने हिंदी के लोक-साहित्य व आंचलिक उपन्यासों पर शोधकार्य करके वहीं से पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। वे लगभग 40 वर्ष तक प्राहा विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्राध्यापक तथा कुछ वर्ष अध्यक्ष भी रहें।

डॉ. स्मेकल ने हिंदी को अपनी दूसरी मातृभाषा माना है। हिंदी उन्हें इतनी अच्छी लगी कि उन्होंने उसे अपना सारा जीवन अर्पित करने का निश्चय किया। हिंदी भाषा पर उन्होंने कई कविताएँ लिखीं, जैसे–

हिंदी ज्ञान, मेरे लिए अमृत पान
जितनी बार पीता हूं
उतनी बार लगता है, पुनः जीता हूं

कवि के अतिरिक्त, इनका अनुवाद में भी बड़ा योगदान रहा है। सन् 1957 में उन्होंने **प्रेमचंद** के **गोदान** को चेक भाषा में अनूदित करके प्रकाशित किया। उन्होंने भारतीय लोक कथाओं का भी अनुवाद कर प्रकाशित किया है। उनके प्रकाशित कविता संग्रह हैं–**तेरे दान**

किए गीत (1982), मेरी प्रीत तेरे गीत (1982), स्वाति बूंद (1983), नमो नमो भारत माता (1983), कमल को लेकर चला (1983) तेरे दिगिदिंग्तर अभिराम (1984), अविराम (1986), मधु मिलन सेतु (1988)। लगता है कि उनके निश्चय ही पूर्व जन्मों के कुछ भारतीय संस्कार रहे होंगे तभी तो उन्होंने इस पावन धरती को अपनी कर्मस्थली बनाया।

डॉ. रूपर्ट स्नेल (इंग्लैंड) : विलायत में हिंदी और ब्रज का दीवाना

1951 में जन्में डॉ. रूपर्ट स्नेल इन दिनों यूनिवर्सिटीज आफ लंदन के दक्षिण एशिया विभाग में प्राच्य और अफ्रीकी अध्ययन केंद्र में हिंदी के रीडर हैं। वे लंदन में भारतीय संस्कृति की अनेक संस्थाओं और मंचों से सक्रिय रूप से संबद्ध हैं। उनकी भारतीय संगीत के मार्फत ब्रजभाषा और खड़ी बोली के हिंदी साहित्य में रुचि पैदा हुई। 1978 से अब तक उनके अंतर्राष्ट्रीय स्तर के प्रकाशनों में अनेक महत्वपूर्ण शोध पत्र प्रकाशित हुए हैं जो मुख्यतः भारतीय संस्कृति एवं मध्ययुगीन और आधुनिक हिंदी साहित्य से संबंधित हैं।

इन्होंने **हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा** के चारों खंडों का हिंदी से अंग्रेजी अनुवाद किया है। इसके अलावा, इन्होंने **धर्मवीर भारती की कनुप्रिया** का भी अनुवाद किया है। लेराउस विश्वकोश में दक्षिण एशियाई साहित्य पर इनकी महत्वपूर्ण टिप्पणियां प्रकाशित हुई हैं। ये इन दिनों मध्ययुगीन हिंदी साहित्य की शैली और शिल्प पर अनुसंधान कर रहे हैं। साथ ही, इन्होंने प्रसिद्ध **कवि कुंवरनारायण की कविताओं** के अंग्रेजी अनुवाद और **रामचरित मानस रीडर** पर भी काम किया है।

डॉ. तोमियो मिजोकामि (जापान) : सूर्योदय के देश में हिंदी

यह हिंदी के क्षेत्र में एक अन्य विलक्षण व्यक्तित्व हैं। इन्होंने इलाहाबाद, शांति निकेतन और दिल्ली में अध्ययन किया है। वे न सिर्फ हिंदी भाषा के अध्येता हैं, बल्कि वे हिंदी में सृजनात्मक साहित्य भी लिखते हैं। जापानी, हिंदी, बंगला एवं पंजाबी भाषा के विद्वान प्रोफेसर तोमियो मिजोकामि का जन्म 12 मई, 1941 को जापान में हुआ। वे हिंदी, जापानी, अंग्रेजी आदि भाषाओं में कई पुस्तकों के रचयिता हैं। उन्होंने अनेक पाठ्य पुस्तकों का निर्माण भी करवाया है। सबसे बड़ी बात यह है कि विदेशी हिंदी विद्वानों में मूल हिंदी में लिखने वाले वे **प्रथम कहानीकार** हैं।

उन्होंने रामानंद सागर के टी.वी. सीरियल **रामायण** को अपने विश्वविद्यालय के तत्वावधान में हिंदी रूपान्तरण प्रकाशित करवाकर हिंदी प्रेमी जनता का दिल मोह लिया। उन्होंने पी.एच.डी. पंजाबी भाषा में की। भाषा विज्ञान में उनकी विशेष रुचि है। वे एक अच्छे अनुवादक हैं और उन्होंने विभिन्न भाषाओं से कई श्रेष्ठ रचनाओं के अनुवाद किए हैं। वे जापानी, हिंदी, बंगला और पंजाबी भाषा में से किसी एक भाषा का दूसरी भाषा में अनुवाद करने में पूर्ण सक्षम हैं। बहुभाषाविद् तोमियो मिजोकामि भारतविद्याविद् हैं।

प्रोफेसर क्यूया दोई व अन्य जापानी विद्वान

जापान के क्यूया दोई ने 1953 से 1955 तक प्रयाग विश्वविद्यालय में हिंदी भाषा का गहन अध्ययन किया। उनका मानना है कि हिंदी और जापानी भाषा संसार की सब भाषाओं में निकटतम है। प्रो. दोई ने अनेक हिंदी रचनाओं का जापानी में अनुवाद किया है पर उनमें **गोदान** का अनुवाद सर्वोत्तम है। 19 जुलाई, 1993 को जापान के इस अनन्य हिंदी प्रेमी और महान भारतविद् का निधन होने पर उनकी अस्थियों का विसर्जन इलाहाबाद के संगम में किया गया। उन्होंने **जापानी-हिंदी** और **हिंदी-जापानी शब्दकोश** का निर्माण कर जापान में हिंदी के अध्ययन में बड़ा योगदान दिया है।

प्रो. एहजो सावा ने 1948 में **हिंदी प्रवेशिका** नामक पुसतक लिखी जो जापानी में देवनागरी की प्रथम पुस्तक के रूप में जानी जाती है। **प्रो. कात्सुरो कोगा** हिंदी-विशेषज्ञ हैं। **प्रो. तोशिओ तबाका** 1965 से 1976 तक दिल्ली विश्वविद्यालय में हिंदी अध्ययन कर चुके हैं। **प्रो. काजुरिको माचिदा** ने 1979 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से हिंदी में एम.ए. किया। **प्रो. ल्सुयोशि ताराने** में भी भारतीय आर्य भाषाओं का ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन किया है। **प्रो. तेईजि साकाता** के शोध प्रबंध भाषाविज्ञान, लोक साहित्य तथा हिंदी साहित्य पर प्रकाशित हो चुके हैं।

अलेक्सेई पेत्रोविच बरान्निकोव, (रूस) : एक व्यक्ति नहीं संस्था

रूस के बरान्निकोव को एक व्यक्ति नहीं अपितु संस्था कहा जा सकता है। उनका जीवन एक अध्येता, अनुसंधानकर्ता और अध्यवसायी भाषाविद् का जीवन था। उन्होंने पूर्व सोवियत संघ में प्राच्य-अध्ययन तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं व साहित्य के गहन अध्ययन की नींव रखी थी। उन्होंने अपने देश में भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा आध्यात्म के अध्ययन को भी प्रोत्साहित किया। वे महान भारतवेत्ता रहे।

उन्होंने लगभग 250 शोधपत्र लिखे। अपने जीवन के अंतिम वर्ष में उन्होंने **भारत विज्ञानी भाषाशास्त्रीय परंपरा संबंधी तुलनात्मक ऐतिहासिक पद्धति के मूल तत्व** नामक कृति लिखकर प्रकाशित करवाई। वे **हिंदी-रूसी शब्दावली** के जनक थे। **मराठी-रूसी** व **उर्दू-रूसी शब्दकोशों** की रचना में भी उनका योगदान रहा। इनकी पुस्तक **हिंदुस्तानी (उर्दू और हिंदी)** बहुत महत्वपूर्ण है। उनकी अन्य उल्लेखनीय रचनाएं हैं—**हिंदुस्तानी की पेचीदा क्रिया-पद्धति, उर्दू में फारसी के तत्व, हिंदी की समस्याएं और भारतीय भाषाओं की परंपराओं में ऐतिहासिक तुलनात्मक पद्धति के तत्व।**

उन्होंने **लल्लूलाल कृत प्रेमसागर** और **जातक कथाओं का रूसी** में अनुवाद किया। **तुलसी के रामचरितमानस का** उन्होंने 1000 पृष्ठों का पद्यबद्ध अनुवाद किया जिसमें उन्हें 10 वर्ष लगे। अंत में, लेनिनग्रांद के पास अपनी कब्र के स्मृति पटल पर भी उन्होंने मानस

की देवनागरी अक्षरों में यह अर्धाली अंकित करवाई। : ***भलो भलाई कि पे लहै*** जो क्या कुछ नहीं कहती।

डॉ. येवगेनी चेलीशेव (रूस) : मैत्री के स्तंभ

27 अक्तूबर, 1921 को मास्को में जन्में डॉ. येवगेनी चेलीशेव सोवियत विज्ञान अकादमी के साहित्य व भाषा विज्ञान विभाग के सचिव रहे हैं तथा भारतीय साहित्य व संस्कृति के जाने-माने विद्वान समझे जाते हैं। हिंदी साहित्य में डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त करके वे कई वर्ष तक मास्को स्थित भारतीय भाषा विभाग के प्रबंधक रहे। काव्य उनका प्रमुख पक्ष था और उनका शोध प्रबंध भी आधुनिक हिंदी कविता से संबंधित रहा **आधुनिक हिंदी कविता की परंपरा और नवीनता।**

उन्होंने हिंदी साहित्य के विकास, भारतीय लेखकों और रूसी तथा भारतीय साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन पर अनेक पुस्तकें लिखीं, उनकी मौलिक, अनूदित और संपादित लगभग 200 कृतियाँ हैं। उनकी कुछ प्रमुख कृतियां हैं—**हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास (नए रूप में), सोवियत-भारतीय मैत्री के स्रोत, भारतीय साहित्यः कल और आज, भारतीय साहित्य की समस्याएं** आदि। अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के लेखक, चिंतक व साहित्यकार डॉ. चेलीशेव के मन में भारत व भारतीय साहित्य के प्रति अगाध निष्ठा और प्रेम रहा है।

प्रो. जोर्जो मिलानेत्ति (इटली) : भारतीय संस्कृति के वाहक

रोम विश्वविद्यालय से जुड़े प्रो. मिलानेत्ति ने 1972 में संस्कृत पढ़नी शुरू की। उनके गुरु थे प्रो. रानियेरी न्योलि, जिन्होंने तंत्रलोक का व शैविज्म के सिद्धांतों का संस्कृत से अंग्रेजी अनुवाद किया है। इसके बाद इन्होंने हिंदू धर्म, हिंदू इतिहास, हिंदी साहित्य व हिंदी भाषा का अध्ययन किया। प्रेमचंद के ग्रामय जीवन पर साहित्य का इन्होंने विशेष अध्ययन किया। बाद में इन्होंने मध्ययुगीन हिंदी (अवधी, ब्रज और खड़ी बोली) के साहित्य में शोध किया—विशेष रूप से संत साहित्य पर। फिर इन्होंने सूफी साहित्य का अध्ययन किया और जायसी के **पदमावत** का अवधी से इतालवी में अनुवाद किया जो वेनिस के मर्सीलियो प्रकाशन से छपा।

पिछले कुछ वर्षों में इन्होंने **रामलीला** और **रासलीला** के अभिव्यक्ति रूपों पर रिसर्च किया। वे घनानन्द की रचनाओं का अनुवाद करने के इच्छुक हैं। इस समय वे रोम विश्वविद्यालय में मध्ययुगीन साहित्य, मध्ययुगीन हिंदू धर्म, सूफी धर्म, संत धर्म आदि के बारे में सिखाते हैं। इनके प्रयासों से अब इटली के रोम व वेनिस विश्वविद्यालयों में हिंदी की चार कक्षाएं चल रही हैं जिनमें हिंदी से सीधे इतालवी में अनुवाद करना भी सिखाया जाता है।

डॉ.रोलान्ड स्टुअर्ट मैकग्रेगर (न्यूजीलैंड) : विलायती हिंदी विद्वान

दुनिया भर में हिंदी के वर्तमान शिक्षा शात्रियों में केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के हिंदी प्रोफेसर डॉ. मैकग्रेगर एक प्रमुख नाम है जिन्होंने पाश्चात्य देशों में हिंदी प्रशिक्षण के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। न्यूजीलैंड के एशबर्टन नामक स्थान में 24 अक्तूबर, 1929 को जन्म डॉ. मैकग्रेगर ने ऑक्सफोर्ड और लंदन विश्वविद्यालयों से हिंदी भाषा और साहित्य की पढ़ाई की और फिर भारत आकर इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हिंदी का उच्चतर अध्ययन किया। भारत में उन्होंने **हिंदी व्याकरण** और **बोलचाल की हिंदी** पर महत्वपूर्ण शोध कार्य किया और लंदन से हिंदी में पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की।

डॉ. मैकग्रेगर एक उच्चकोटि के अनुवादक, संतकाव्य के विशेषज्ञ और व्याकरण के पंडित हैं। उन्होंने कई पुस्तकें लिखीं और उनके शोधपरक लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। हिंदी साहित्य की अनवरत सेवा के लिए सन् 1978 में उन्हें विश्व हिंदी पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। वे 1956 से 1964 तक लंदन विश्वविद्यालय में स्कूल ऑफ ओरियंटल एंड अफ्रीकन स्टडीज में भाषा विज्ञान और हिंदी के प्राध्यापक रहे। बाद में, वे कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में हिंदी के प्रोफेसर बने। उन्होंने पेंसिलवानिया, वाशिंगटन, स्टॉकहोम और आस्ट्रेलिया राष्ट्रीय विश्वविद्यालय में भी हिंदी का अध्ययन किया है।

उनकी पुस्तक **द लैंग्वेज ऑफ इन्द्रजित ऑफ ओरछा** भाषा-वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए एक महत्वपूर्ण विषय है। उन्होंने **नंददास** की **रास पंचाध्यायी** और **भ्रमरगीत** का अनुवाद भी किया है। इसके अतिरिक्त, उनकी **नंददास द राउंड डांस ऑफ कृष्ण उद्धव मैसेज, हिंदी लिटरेचर ऑफ नाइनटीन्थ एंड अर्ली ट्वंटिएथ सेंचुरी** पुस्तकें काफी प्रसिद्ध हैं। उन्होंने अपने विदेशी हिंदी विद्यार्थियों के लिए 1970 में **हिंदी मौखिक अभ्यास माला** नामक पुस्तक प्रकाशित कराई थी जो बहुत उपयोगी सिद्ध हुई। उन्होंने हिंदी व्याकरण पर भी **आउटलाइन ऑफ हिंदी ग्रामर** नामक महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी जिसे सारे यूरोप और अन्य हिंदी अध्यापन वाले देशों में पाठ्य-पुस्तक के रूप में निर्धारित किया गया है। उन्होंने ब्रिटेन में हिंदी को लोकप्रियता के नए आयामों तक पहुँचाया है।

डॉ. लोठार लुत्से (जर्मनी) : हिंदी के विशिष्ट प्रणेता

7 सितंबर, 1927 को जर्मनी के साइलेशिया में जन्मे प्रोफेसर लोठार लुत्से गत 35 वर्षों से भारतीय साहित्यकारों और साहित्य के प्रति जागरूक लोगों में एक सुपरिचित व्यक्तित्व हैं। वे जर्मनी के हाइडेलबर्ग विश्वविद्यालय के दक्षिण एशिया संस्थान में आधुनिक भारतीय भाषा एवं साहित्य विभाग के संस्थान अध्यक्ष हैं। डॉ. लुत्से हिंदी, बंगला व कन्नड़ के विद्वान हैं और उन्होंने इन भाषाओं से कई रचनाओं का सीधे अनुवाद जर्मन में किया है उन्होंने अंग्रेजी में पी.एच.डी. किया पर वे रूसी के भी अच्छे ज्ञाता हैं। हिंदी क्षेत्र में निरंतर सक्रिय डॉ. लुत्से ने अपने हिंदी विद्यार्थियों के लिए एक पाठ्यपुस्तक तैयार कर प्रकाशित करवाई है।

उनका आलोचनात्मक निबंधों का एक संग्रह **साहित्य : विविध संदर्भ** 1963 में अक्षर प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। वे मुख्यतः भाषा-वैज्ञानिक हैं और प्रयोगवाद को आधुनिक हिंदी साहित्य का पहला विशुद्ध साहित्यिक आंदोलन मानते हैं। उनका **समसामयिक हिंदी कविताओं का जर्मन अनुवाद (संकलन)** 1968 में प्रकाशित हुआ। वे एक ओजस्वी हिंदी वक्ता भी हैं। भाषा-विज्ञान के सिद्धांतों पर उनका कार्य अत्यंत उल्लेखनीय रहा है।

डॉ. कैथरिन जी. हैन्सन (कनाडा) : हिंदी की सुगंध

डॉ. कैथरिन कनाडा के ब्रिटिश कोलम्बिया विश्वविद्यालय में भारतीय भाषाओं और साहित्य की प्रोफेसर हैं। उन्होंने कैलिफोर्निया के साउथ ईस्ट एशियन स्टडीज विभाग से **फणीश्वरनाथ रेणु : आधुनिक उपन्यासों में ग्रामीण और नगरीय चेतना का एकीकरण विषय** पर पी.एच. डी. की। वे हिंदू, उर्दू और संस्कृत भाषाओं की कक्षाओं का शिक्षण करती हैं। साथ ही, उनके शोध के मुख्य विषय हैं—आधुनिक हिंदी कथा साहित्य, दक्षिण एशिया का साहित्यिक और सांस्कृतिक अध्ययन, भारतीय शास्त्रीय संगीत, हिंदी और उर्दू का लोक साहित्य, दक्षिण एशिया में नारीवाद तथा सिनेमा, नाटक, थियेटर आदि से संबंधित अन्य विषय।

इनकी प्रमुख पुस्तकें हैं—1982 में **जर्नल ऑफ साउथ एशियन लिटरेचर (रेणु विशेषांक), 1986 में द थर्ड वर्ड एंड अदर स्टोरीज़, 1987** में **प्रारंभिक हिंदी अभ्यास पुस्तिका** जो कोलम्बिया विश्वविद्यालय के एशियन स्टडीज विभाग से विद्यार्थियों की सुविधा के लिए तैयार की गई, उनकी चौथी पुस्तक यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया, बर्कले प्रेस से 1992 में **ग्राउंड फॉर प्ले : द नौटंकी थियेटर ऑफ नार्थ इंडिया** थी। प्रो. कैथरिन एक प्रबुद्ध विदुषी हैं जो लेखन के क्षेत्र में काफी सक्रिय है और साथ ही यह हिंदी से अंग्रेजी भाषा की एक सिद्धहस्त अनुवादक भी हैं। इन्होंने रेणु के अलावा **धर्मवीर भारती** और **राजेन्द्र यादव** की रचनाओं को भी अंग्रेजी में अनुवाद कर प्रकाशित किया है।

प्रो. मारिया क्षेष्टोफ बृस्की (पोलैंड) : भारत प्रेमी हिंदी मनीषी

सन् 1937 में पोलैंड के विलना नामक गांव में जन्मे डॉ. बृस्की इस समय वहां वारसा विश्वविद्यालय के प्राच्यविद्या विभाग में संस्कृति विभाग के प्रोफेसर हैं। वहां स्नातक स्तर पर हिंदी व उर्दू के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था भी हैं। इन्होंने पोलस्की (पोलिश) भाषा से हिंदी और संस्कृति से पोलस्की अनुवाद के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया है। उन्होंने कई दशकों तक वहाँ संस्कृत और हिंदी भाषाओं का अध्यापन किया। इन्होंने 1966 में **कान्सेप्ट ऑफ एंशिएंट इंडियन थियेटर** विषय पर बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। वहीं उन्होंने हिंदी का भी अध्ययन किया। 1979 में वह वारसा विश्वविद्यालय के भारतविद्या विभाग के अध्यक्ष बने। 1990 में विदेश-सेवा में नियुक्ति होने पर वह पोलैंड गणराज्य के भारत स्थित सांस्कृतिक परामर्शदाता बनाए गए और 1993 में वह भारत में पोलैंड के राजदूत बनाए गए।

उन्होंने **भास** के नाटकों के अलावा **मनुस्मृति, गंगा स्रोत, बालचरित, वात्स्यायन के कामसूत्र।** आदि का भी अनुवाद किया है। पुस्तकों के अलावा उनके नाट्यकला, आधुनिक सिनेमा, संस्कृत-नाटक और बंबइया सिनेमा आदि पर कई लेख प्रकाशित हुए हैं। डॉ. बृस्की भारत-प्रेमी हैं। भारतीय कला, संस्कृति, परंपरा और दर्शन आदि विषयों में उनकी विशेष रुचि है। पोलस्की और भारतीय संस्कृति को बिना अंग्रेजी के सहयोग के प्रस्तुत करने वाले ऐसे भारतविद्याविद् पर भला किसे गर्व नहीं होगा और उन्हें हिंदी बोलते सुनना तो एक विलक्षण अनुभव है ही।

निकोलाय ज़्बैर्या (रोमानिया) : अद्वितीय अंतरंग मित्र

हिंदी, संस्कृत और भारतविद्या प्रेमी प्रो. निकोलाय ज़्बैर्या का नाम रोमानिया में बड़े आदर से लिया जाता है। इन्होंने बिना किसी शिक्षक के अपने प्रयास से ही हिंदी सीखी और इनका हस्तलेख बहुत सुंदर था। जर्मनी को छोड़कर पश्चिम के सब देशों में रोमानिया में ही भारतीय संस्कृति, दर्शन, कला, संगीत, संस्कृत एवं हिंदी भाषा के प्रति सबसे अधिक रुचि है। रोमानिया में प्रायः प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति **महाभारत, रामायण** और **शकुंतला** के नाम से परिचित है।

प्रो. ज़्बैर्या के सतत प्रयासों से बुखारेस्ट में हिंदी पुस्तकालय की स्थापना की गई। वहाँ उन्होंने हिंदी भाषा के स्वरूप और आधुनिक हिंदी साहित्य पर कई व्याख्यान दिए जिससे लोगों की हिंदी में रुचि जागृत हुई। इनके प्रयासों से ही भारत रोमानिया सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम पर हस्ताक्षर हुए जिसके तहत दोनों देश एक दूसरे के यहां हिंदी व रोमानियन के प्रोफेसर नियुक्त करते हैं। उनके शोध का मुख्य विषय **प्राचीन भारतीय ट्रेजेडी की समस्या** है जिसके अनुसार संस्कृत नाटय-कला में ट्रेजेडी का अस्तित्व था। उनके अनुसंधान के अनुसार भास को भारत का वास्तविक शेक्सपियर समझना चाहिए। वे महान-प्रेमी थे और उनका पुस्तकालय भारतविद्या और भारतीय आध्यात्मिक पुस्तकों से भरा पड़ा था। 1974 में उन्होंने **रोमानियन भारतीय मित्रता समाज** की स्थापना की जिसने वहां हिंदी के प्रचार-प्रसार में बड़ा योगदान दिया।

प्रो. फ़िन थीसन (डेनमार्क) : यायावर प्रेमचंद

स्वभाव से यात्रा-प्रेमी फ़िन थीसन पर्यटन के हर अवसर का पूरा लाभ उठाते हैं। उनकी यही प्रवृत्ति उन्हें भारत ले आई और उन्होंने काशी हिंदू विश्वविद्यालय से हिंदी सीखी। उसके बाद संस्कृत, फारसी-उर्दू का भी ज्ञान प्राप्त किया। हिंदी से उन्हें विशेष लगाव रहा लेकिन वे हिंदी और उर्दू को एक मानते हैं। उनका उपनाम प्रेमचंद भी है। प्रेमचंद इनके सबसे प्रिय लेखकों में हैं। भारत सरकार ने इन्हें हिंदी अध्ययन हेतु छात्रवृत्ति प्रदान की। प्रो. फ़िन थीसन का विशेष अनुसंधान **छंद शास्त्र** पर है, जिस पर उनकी 300 पृष्ठों की एक पुस्तक प्रकाशित हुई है। इसके अतिरिक्त, उनके अनेक शोध-पत्र भी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। उनकी कुछ पुस्तकें हैं—**हिंदी व्याकरण, हिंदी-उर्दू में प्रवेश व हिंदी-उर्दू से डेनिश**

नार्वीजन शब्दकोश आदि।

इन्होंने कोपेनहेगन विश्वविद्यालय से हिंदी प्राध्यापक के रूप में कार्य आरंभ किया। तत्पश्चात, ओस्लो विश्वविद्यालय में उर्दू-शिक्षक बने। भारत के प्रति इनके मन में बहुत आदर भाव रहा है। फ़िन थीसन हिंदी-प्रेमी अवश्य हैं लेकिन वे प्रेमचंद की सरल एवं जनभाषा वाली हिंदी के पक्षधर हैं। उनका मत है कि हिंदी को आगे बढ़ाने के लिए जरूरी है कि पंडितों की भाषा नहीं, जनता की भाषा को आगे बढ़ाया जाए। हिंदी-उर्दू एकता के प्रबल पक्षधर प्रो. थीसन ने इस एकता को मात्र नारा ही नहीं दिया बल्कि उसका व्यावहारिक रूप भी प्रस्तुत कर अपने उपनाम प्रेमचंद को सार्थक कर दिखाया है।

मारिया नेज्यैशी (हंगरी): व्याकरण की विदुषी

29 अप्रैल, 1953 को बुडापेस्ट में जन्मी मारिया नेज्यैशी बहुभाषाविद् हैं। वे संस्कृत, अंग्रेजी, रूसी, लैटिन, प्राचीन यूनानी एवं हिंदी भाषा का अच्छा ज्ञान रखती हैं। तुलनात्मक भाषाविज्ञान में विशेरू रुचि होने के कारण इन्होंने प्राचीन फारसी और अवेस्ता भाषा भी पढ़ी। सन् 1983 से इन्होंने ओत्वोश लोरान्द विश्वविद्यालय के भारोपीय भाषाविज्ञान विभाग में हिंदी पढ़ाना शुरू किया। इन्होंने **भर्तृहरि के शृंगारशतक** विषयक अनुसंधान कार्य पर पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की जो कि इस कार्य के अनुसंधान के क्षेत्र में एक नई उपलब्धि मानी जाती है।

सन् 1985-86 में इन्हें सांस्कृतिक आदान-प्रदान छात्रवृत्ति के अन्तर्गत केंद्रीय हिंदी संस्थान, नई दिल्ली में हिंदी अध्ययन का अवसर मिला और तब से इन्होंने हिंदी को अपना कार्यक्षेत्र बना लिया है। वे मुख्यतः **हिंदी व्याकरण** के बारे में अनुसंधान कार्य करती हैं और उनका यह कार्य हिंदी व्याकरण के क्षेत्र में एक नई देन के रूप में उभरा है। इस समय वे हिंदी भाषा और साहित्य के लिए पूरी तरह समर्पित हैं और आधुनिक हिंदी-साहित्य की कई कृतियों का हंगेरियन भाषा में अनुवाद करने में संलग्न हैं।

कोल्ची कोवाचेव (बल्गारिया): सहज अनुवाद के चितेरे

इनकी बल्गारिया में हिंदी के इने-गिने विद्वानों में चर्चा होती है क्योंकि इन्होंने न केवल सोफिया विश्वविद्यालय से हिंदी रूपों पर उनका अद्भुत अधिकार है। हिंदी भाषा और साहित्य पर उनकी अच्छी पकड़ है। वे बहुत अच्छी हिंदी बोलते हैं और मूल हिंदी से बल्गारियन में अनुवाद करते हैं। उनकी रुचि भारतीय दर्शन, संस्कृत-साहित्य, योग, हिंदी तथा संस्कृत भाषा में हैं।

उन्होंने कुछ लघु-कथाओं के माध्यम से अनुवाद कार्य आरंभ किया। कृश्न चन्दर लिखित **दादर पुल के बच्चे** उनकी प्रमुख अनूदित साहित्यिक कृति है। इनकी सबसे महत्वपूर्ण अनूदित कृति प्रेमचंद के **गोदान** का बल्गारियन अनुवाद है जो **ज़ेरत्वेनता क्रावा** शीर्षक से

नरोदना कुल्तूरा प्रकाशन संस्था ने सन् 1985 में प्रकाशित किया है। इनके अनुवाद की भाषा सरल और सहज होने के कारण बल्गारिया में विशेष लोकप्रिय रही है। उन्होंने **जयशंकर प्रसाद की कहानियों** और **श्रीमदभगवद्गीता** का भी बल्गारियन में अनुवाद किया है जो कि विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

डॉ. माईकल सी. शपीरो (अमेरिका)—हिंदी में नई चेतना के वाहक

इनका जन्म 10 सितंबर, 1946 को न्यूयार्क शहर में हुआ। इन्होंने बी.ए. और एम.ए. भाषाविज्ञान में किया और बाद में शिकागो विश्वविद्यालय से ही भाषाविज्ञान में हिंदी विषय पर पी.एच.डी की उपाधि प्राप्त की। इस समय ये वाशिंगटन विश्वविद्यालय में एशियन भाषा और साहित्य विभाग के प्रोफेसर हैं। ये एक अच्छे लेखक और समीक्षक हैं। इनके लगभग बीस शोधपरक लेख और इतने ही ग्रंथों की समीक्षाएं प्रकाशित हो चुकी हैं। इन्होंने प्रेमचंद विशेषांक में गंभीर लेखक प्रेमचंद के हास्य-विनोद के पुट को उजागर किया जो कि एक अछूता पक्ष था।

इन्होंने हिंदी का अध्ययन 1967 में आरंभ किया था। इन्होंने **हिंदी वाक्य-रचना में वर्तमान प्रवृत्तियां** विषय एवं कई अंग्रेजी-हिंदी शब्दकोशों पर आलोचनात्मक टिप्पणियां दी हैं और न्यूनताओं को दूर करने के प्रयास सुझाए हैं। ये **लैंग्वेज एंड सोसाइटी इन साउथ एशिया** पुस्तक के सहलेखक हैं जिसमें समाज-भाषावैज्ञानिक अध्ययन का सुंदर परिचय दिया गया है। 1989 में इन्होंने **एक आधुनिक मानक हिंदी प्रवेशिका** तैयार करवाकर प्रकाशित की जो हिंदी शिक्षण सामग्री के अभाव की पूरक है। प्रो. शपीरो ने **हिंदी भाषा का इतिहास** भी लिखा है जिसमें अपभ्रंशकाल से लेकर आधुनिक खड़ी बोली एक हिंदी का विकास दर्शाया गया है। इन्हें विदेशी हिंदी विद्वानों की श्रेणी में एक सक्रियतम लेखक एवं समीक्षक माना जा सकता है।

डॉ. रिचर्ड के. बार्ज (आस्ट्रेलिया) :

डॉ. बार्ज हिंदी और उर्दू के विद्वान और भाषावैज्ञानिक हैं जो आस्ट्रेलिया के कैनबरा राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के एशियाई अध्ययन के हिंदी-उर्दू विभाग के अध्यक्ष हैं। यहां स्नातकोत्तर उपाधि के स्तर तक हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था है जो इन्हीं के प्रयासों के चलते संभव हो सकी है। डॉ. बार्ज के लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। उन्होंने मारीशस के **प्रहलाद रामशरण** की मारीशस की लोककथाएं पुस्तक की समीक्षा भी प्रस्तुत की है। उनका **मारीशस में हिंदी का सांस्कृतिक महत्व** विषय पर एक शोधपरक लेख प्रकाशित हुआ है जिसमें उन्होंने हिंदी और भोजपूरी के संबंध पर विचार प्रकट किए हैं।

अपने देश में हिंदी के प्रचार-प्रसार में इनका महत्वपूर्ण योगदान है। वहां हिंदी स्थापित करने और विश्व-हिंदी के वातावरण के निर्माण में उनकी महती भूमिका है। भारत

के बाहर कुछ गिने-चुने ही ऐसे विश्वविद्यालय हैं जहां शोध के स्तर पर हिंदी भाषा और साहित्य के अध्ययन-अध्यापन की ऐसी सुंदर व्यवस्था है। मूलतः इसका श्रेय डॉ. बार्ज को ही जाता है।

एक अनंत यात्रा की ओर

इंग्लैंड के अंग्रेज विद्वान एफ.एस.ग्राउज को भुला पाना संभव नहीं जिन्होंने तुलसीदास की साहित्यिक महत्ता को यूरोपीय विद्वतवर्ग के सम्मुख प्रस्तुत करने का सर्वप्रथम ईमानदार प्रयास किया था और कई वर्ष के निरंतर परिश्रम के बाद सन् 1880 में **रामचरितमानस का प्रथम अंग्रेजी अनुवाद** प्रकाशित किया था जिसके 7 संस्करण प्रकाशित हुए। ऐसे ही, देश की भाषाओं में सबसे पहले हिंदी के दो शब्दकोश **जे. फर्गुसन** नामक विद्वान ने रोमन अक्षरों में सन् 1773 में लंदन में छपवाए। फिर 1790 में, एडिनबरो में **श्री जे.वी. गिलक्राइस्ट** का **अंग्रेजी-हिंदुस्तानी व हिंदुस्तानी-अंग्रेजी** कोश प्रकाशित हुआ। इसी प्रकार, **डॉ. अब्राहम ग्रियर्सन** ने भी हिंदी की अटूट सेवा की जो कि विशेष रूप से भाषाविज्ञान के क्षेत्र में सक्रिय रहे और हिंदी के आधुनिक स्वरूप पर इनकी टिप्पणियां अत्यंत महत्वपूर्ण है।

भारत और हिंदी प्रेमी विद्वानों की यह सूची अंतिम नहीं है। बीजिंग में भारतीय विद्या विभाग के **प्रो. जिंन डिंगहान** ने 10 वर्ष तक हिंदी भाषा सीखकर **गोस्वामी तुलसीकृत रामचरितमानस** का **चीनी भाषा में पद्यानुवाद** किया है। इसी तरह बीजिंग के ही 85 वर्षीय विद्वान **डॉ. चीनशेंग** ने **वाल्मीकि रामायण** का अनुवाद चीनी भाषा में किया है जो 8 खंडों में प्रकाशित हुआ है। इनके अलावा, दक्षिण पूर्व एशिया के **थाईलैंड, श्रीलंका, चीन नेपाल, कोरिया, फीजी, मॉरिशस, रोमानिया, बल्गारिया, हंगरी, फ्रांस, इटली, नार्वे, अमेरिका, मैक्सिको, सूरीनाम, ट्रिनिडाड** और **आस्ट्रेलिया** आदि अनेक देशों में कई विदेशी विद्वान हैं जो हिंदी भाषा और साहित्य का गहरा अध्ययन-मनन कर रहे हैं और इस भाषा के विकास में अपना महत्वपूर्ण सृजनात्मक-वैचारिक योगदान दे रहे हैं।

भारत से बाहर हिंदी में एक नवीन धारा को प्रवाहित करने का एक बड़ा श्रेय माँ भारती के इन विदेशी उपासकों को है। अपनी पैनी दृष्टि, अपूर्व सूझबूझ, मौलिक कल्पना और असाधारण श्रम से सरस्वती के इन विदेशी आराधकों ने हिंदी का परिष्कार, संस्कार एवं नई दृष्टि से निर्माण किया है। इनकी व्याकरण व भाषा-विज्ञान संबंधी मौलिक अवधारणाएं भारत में आधुनिक हिंदी के महारथियों के लिए एक बड़ी चुनौती हैं। माँ सरस्वती के आराधक इन भाषाई भगीरथों ने विविध धाराओं द्वारा हिंदी के क्षेत्र को अपनी रचनाओं से सींचकर पल्लवित-पुष्पित किया है।

इसे विडंबना ही कहा जाएगा कि अंग्रेजी की मानसिक गुलामी के कारण हम अपने ही देश में हिंदी का महत्व अभी तक पूरी तरह प्रतिष्ठित नहीं कर पाये हैं। हिंदी केवल एक भाषा ही नहीं, अपितु भारतीय संस्कृति की सबल संवाहिका भी है। विदेशों में करोड़ों की

संख्या में बसे अप्रवासी भारतीयों और भारतीय मूल के लोगों के बीच आत्मीयता के संबंध-सूत्र स्थापित करने और उन्हें भारत, भारतीयता और भारतीय संस्कृति से निरंतर जोड़े रखने में हिंदी एक सशक्त माध्यम का काम कर रही है। हिंदी के विदेशी विद्वानों ने हिंदी के माध्यम से ही भारत की परंपरा और उसकी आत्मा को समझने का प्रयास किया है परंतु हम अपनी इस अस्मिता को कब पहचानेंगे? संभवतः राजभाषा हिंदी के स्वर्ण जयंती वर्ष में यही अब सही समय है अपने आप को एक नई पहचान देने का और विश्व में अपने स्वाभिमान के गौरव को एक नई आन देने का।

सहायक महाप्रबंधक (हिंदी) भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, उत्तरी अंचल कार्यालय, नई दिल्ली

जल बिच कुंभ, कुंभ बिच जल है बाहर भीतर पानी।
फूट घट जंल-जलहिं समाना, यही तत्व कह ज्ञानी।।

—कबीर

संत रैदास की काव्य चेतना

—जय प्रकाश कर्दम

हिंदी साहित्य की भक्तिकालीन धारा में संत काव्य का जो स्थान है वही स्थान संत काव्य धारा में रविदास जी का है। संत रैदास का जन्म पन्द्रहवीं शताब्दी विक्रमी में काशी में एक 'चमार' परिवार में हुआ था। कहते हैं कि बाल्यावस्था में ही वह स्वामी रामानन्द जी का उल्लेख करते हुए एक पद में कहा है कि 'ढोरों' का व्यवसाय करते हुए उन्होंने माया का परित्याग कर दिया तथा साधुओं के साथ रहते हुए भगवान को भी प्रत्यक्ष कर लिया था। नाभादास कृत 'भक्तमाल' में रविदास जी का उल्लेख बड़े आदर के के साथ किया गया है। प्रसिद्ध भक्त कवियित्री मीराबाई ने अपने कई पदों में रैदास जी की अपना गुरु बताया है। चित्तोड़ की रानी झाली को भी रविदास जी कि शिष्या बताया जाता है। वस्तुतः समाज की निम्न जाति में जन्म लेने तथा मोची का काम करने के बावजूद अपने ज्ञान, भक्ति और साधना के बल पर उन्होंने अपने समकालीन संतों में एक विशिष्ट स्थान बना लिया था। उनके महत्व का पता इसी से चलता है कि कबीर जैसे अग्रणी संत ने भी उनको वंदनीय माना है और उनमें 'संतों में संत' कहा है।.

रैदास जी संत कवि हैं। 'संत' शब्द सत्य के अन्वेषण और उसकी साधना को घोषित करता है। ऐसा सत्य जो साक्षात किया हुआ हो, स्वतः अनुभूत ज्ञान में उपलब्ध होता हो। इसलिए, रैदास जी का सहित्य 'आत्म-स्थापना' का साहित्य है, जो सत्य ज्ञान पर अवलम्बित है।

रैदास जी की समस्त रचनाओं का कोई पूरा प्रामाणिक संग्रह उपलब्ध नहीं है। आदि ग्रंथ (गुरु ग्रंथ साहिब) में उनके 40 पद संग्रहीत हैं। वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित 'रैदास की बानी' में उनके कुल एक सौ से कुछ अधिक पद मिलते हैं। इनके अलावा, 'प्रह्लाद चरित' नाम से 18 छन्दों की उनकी एक अन्य रचना भी मिलती है। इस तरह के कुल 115 के आस पास ही पद मिलते हैं। यह अलग बात है कि उनकी बहुत सी रचनाएं अप्रकाशित तथा राजस्थान के विभिन्न अंचलों में हस्तलिखित ग्रंथों के रूप मे बिखरी पड़ी हैं। यथार्थतः रविदास जी की सम्पूर्ण रचनाओं को एकत्र करके उनको प्रकाशित करने का कोई गहन प्रयास अभी तक नहीं हुआ है।

हालांकि मात्रा की दृष्टि से रविदास जी का रचना संसार बहुत बड़ा नहीं है किन्तु अपनी रचनाओं में रविदास जी ने अपने विचारों को बड़ी स्पष्टता के साथ व्यक्त किया है। यूं उनकी रचनाओं में कबीर की सी अक्खड़ता, उग्रता और फक्कड़पन नहीं है और वह बहुत शान्त और सौम्य दिखाई देते हैं। 'प्रभु जी तुम स्वामी हम दासा' जैसी रचनाओं में तो वह

बहुत ही दीन दिखाई पड़ते हैं। किन्तु यथार्थ में रविदास जी सर्वत्र दीन-हीन ही नहीं बने रहते, जब और जहां जरूरी हुआ है, उन्होंने अपनी इस दीनता और सौम्यता को त्यागा है और पूरे साहस और दृढ़ता से अपनी बात कहीं है। 'तोडूं न पाती, पूजूं न देवा' या 'भाई रे, कहाँ है मोहि बताओ' आदि वाणियां उनकी इसी दृढ़ता की ओर इंगित करती हैं।

रविदास भक्त कवि हैं और निर्गुण की आराधना करते हैं। जहां एक ओर उन्होंने ब्रह्म के गुण, ज्ञान गान, रूप के आख्यान आदि को अपना प्रमुख विषय बनाया है; वहीं उसे प्राप्ति के साधन स्वरूप नाम-महात्मय, नाम, जप, संत-महिमा, गुरु-संगति और भक्ति की महिमा आदि को भी अपना वर्ण्य विषय बनाया है। उनकी वाणी का आधार उनकी वैयक्तिक अनुभूति है, चाहे वह लौकिक जीवन से अनुप्राणित हो अथवा अलौकिक जीवन के प्रति समर्पित।

रैदास जी केवल एक भक्त और साधक कवि ही नहीं थे, वह एक सामाजिक चिंतक भी थे। वह समाज की तरक्की और विकास देखना चाहते थे। समाज का विकास व्यक्ति के विकास पर निर्भर करता है। इसलिए, प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह आत्ममंथन करे, अपने अवगुणों और दोषों को जाने और उनको दूर करने हेतु प्रयास करे। भगवान की मूर्ति के समक्ष धूप और अगरबत्ती जलाने और पूजा, प्रार्थना करने का कोई औचित्य नहीं है यदि मन स्वच्छ और निर्मल नहीं है। असली चीज है मन की शुद्धता और रविदासजी ने मन का ही महत्व प्रतिपादित किया है यह कहकर कि—

'मन ही पूजा, मन ही धूप
मन ही सेउ सहज सरूप।'

रैदास जी ने आचरण की शुद्धता पर बहुत बल दिया है। व्यक्ति को माया, मोह, राग-द्वेषादि से ऊपर सद-आचरण करना चाहिए, यही नैतिक मूल्य है, इसी में जीवन का विकास निहित है। रविदास जी का कहना है,

"संत, संतोष अरू सदाचार जीवन को आधार,
रविदास भये नर देखते, जिन तिआगे पंच विकार।"

रविदास जी एक जारूक कवि हैं, इसलिए उनकी बानियों में उन सभी विचारों और मान्यताओं के प्रति एक प्रतिक्रिया दिखाई देती है जो वर्ण और जाति-व्यवस्था की पोषक थी तथा समाज में असमानता और अलगाव को जन्म दे रही थीं। सही मायनों में वह व्यक्ति की स्वतंत्रता और समानता के पक्षपाती थे। इसलिए, छुआछूत और जाति-पाति का उन्होंने घोर विरोध किया। उनका कहना था "जाति पाति पूछै नहि कोई।"

केवल जन्म के आधार पर व्यक्ति को श्रेष्ठ अथवा हीन मानने की प्रवृत्ति के वह खिलाफ थे। उनकी मान्यता थी कि जन्म के आधार पर नहीं अपितु गुण-कर्म के आधार पर

ही व्यक्ति को महत्व दिया जाना चाहिए। इसलिए, रैदास जी का यह कहना है कि—

'रैदास ब्राह्मण मति पूजिए जऊ होवे गुनहीन।
पूजहि चरन चंडाल के जऊ होवे गुन परवीन।।'

एक अन्य स्थान पर उन्होंने कहा है :—

'रविदास जनम के कारणै होत न कोई नीच।
नर कू नीच करि डारि है औछे करम की कींच।'

उनकी यह स्पष्ट धारणा है कि जब तक समाज में छुआ-छूत और जाति-पाति की व्यवस्था बनी रहेगी तब तक समाज में एकता और समानता नहीं आ सकती है। यथा—

'जात जात में जात है ज्यों केलन में पातं।
रविदास न मानुष जुड़ सकें जौ लो जात न जात।'

रैदास जी ने हालांकि भक्ति और साधना में लीन होकर पद गाए हैं किन्तु सामाजिक दायित्वों के प्रति वह पूर्णतः सजग रहे हैं। उनका समग्र साहित्य परम्परागत मान्यताओं एवं विश्वासों के विरुद्ध रूढ़ियों व आडम्बरों के विरुद्ध, अनैतिकता और अधर्म के विरुद्ध तथा असत्य और अविवेक के विरुद्ध एक मुहिम है। यथार्थ में वह सतत् संघर्षरत सत्य-धर्म के एक प्रहरी हैं, इसलिए न केवल छुआ-छूत और जाति-पाति बल्कि समाज में व्याप्त दूसरी बुराइयों का भी उन्होंने तीव्र विरोध किया है। धर्म के नाम पर ढोंग और दिखावा करने वालों को रैदास जी ने आड़े हाथों लिया है और कहा है—

'माथै तिलक हाथ जप माला
जग ठगनं कू स्वांग बनाया।'

इसी तरह पूजा-अर्चना, तीर्थ-व्रत अथवा साधना के बाह्य विधानों को भी उन्होंने व्यर्थ बताया है। उनका कहना है—

'तीरथ व्रत करूं अन्देशा
बिन सहज सिद्ध न होय।'

इससे भी आगे बढ़कर वह कहते हैं :—

'का मथुरा का द्वारिका, का कासी हरिद्वार
रविदास खोजा दिल आपना तऊ मिलिया दिलदार।'

रैदास जी विधिवत रूप से शिक्षित नहीं थे। उन्होंने जो भी शिक्षा पाई वह साधु संतों की संगति, भ्रमण, परिवेश तथा अन्तः प्रेरणा से ही पाई। इसलिए जैसे वह स्वयं अशिक्षित थे वैसे ही उनकी भाषा का भी कोई सुगठित रूप नहीं था। वस्तुतः रविदास जी लोक मानस के कवि हैं और लोक-मानस लोक-भाषा में ही सही-सही अभिव्यक्ति और विकास पाता है। इसलिए उनके काव्य की भाषा लोक प्रचलित जन भाषा है, जो कृत्रिमता, दुरूहता और शब्दाडम्बर से रहित है। सत्संग और प्रवचन के निमित्त उन्होंने अनेक स्थानों का भ्रमण किया। वह जहां भी गए वहीं की लोक-भाषा में अपनी बात कहीं। इसलिए उनके काव्य में एक अनिश्चित तथा मिश्रित भाषा का प्रयोग देखने को मिलता है। सही मायनों में कबीर की तरह रैदास की भाषा का प्रयोग देखने को मिलता है। सही मायनों में कबीर की तरह रैदास की भाषा एक पंचमेल खिचड़ी है जिसमें ब्रज, अवधि, भोजपुरी, खड़ी बोली व पंजाबी का मिश्रण है। इसके अलावा, यत्र-तत्र उर्दू, फारसी के शब्दों का भी प्रयोग इनकी भाषा में हुआ है।

कहीं-कहीं पर तो उर्दू-फारसी के शब्दों का प्रयोग इतनी प्रचुरता के साथ हुआ है कि वह मूल उर्दू-फारसी की ही रचना प्रतीत होती है। इस संदर्भ में उनका एक पद दृष्टव्य है :—

'खालिक सिकरता में तेरा
दे दीदार उमेदगार, बेकरार जिव मेरा।
औबल आख़िर इलाह आदम फरिस्ता बंदा
जिसकी पनह पीर पैगम्बर मैं गरीब क्या बंदा।
तू हाजरा हजूर जोग इक अवर नहिं है दूजा
जिसके इसक आसरा नहिं क्या निवाज क्या पूजा।
नालीदोज हनोज बेबख्त कमिं खिजमतगार तुम्हारा
दरमोदा दर जवाब न पावै कह रैदास बिचारा।'

रैदास जी में सामाजिक यथार्थ की सच्ची पकड़ है। इसलिए, वह अपनी बात को ज्यादा स्पष्ट और जोरदार ढंग से कह सकने में समर्थ हुए हैं। बेशक वह निरे अशिक्षित थे और उनको 'आखर ज्ञान' नहीं था तो भी उनकी रचनाओं में काव्यात्मक सौन्दर्य की अद्भूत छटा देखने को मिलती है। जो उनकी प्रखर प्रतिभा की द्योतक है। रविदास जी के काव्य की भाषा सरल, सुबोध और प्रभावशाली है। उनका काव्य सौद्देश्य है और उसका उद्देश्य है जन-मानस तक अपने मन की बात पहुंचाना। इसके लिए उन्होंने प्रतीकात्मक शैली को अपनाया है और उन्होंने जो प्रतीक अपनी रचनाओं में चुने हैं वे सब के सब लोक जीवन से ही लिए गए हैं। इससे उनके काव्य के सम्प्रेषणी आधार को और अधिक बल मिला है। रैदास जी का एक पद है :—

'प्रभुजी तुम चन्दन हम पानी
जाकी अंग-अंग बास समानी।

प्रभुजी तुम बन हान हम मोरा
जैसे चितवन चांद चकोरा।'

भावों की प्रेषणीयता की दृष्टि से इस पद ने सर्वाधिक प्रभाव डाला है। 'तुम' और 'मैं' की इस शैली ने तो अपनी ऐसी छाप छोड़ी कि अनेक आधुनिक कवियों ने इस शैली में कविताएं लिखीं। निराला जी की यह कविता में उल्लेखनीय है :—

'तुम तुंग हिमालय श्रंग
और मैं चंचल गति सुर सरिता
तुम विमल हृदय उच्छवास
और मैं कान्त कामिनी कविता।'

वस्तुतः रविदास जी का जीवन जितना सादा, सहज और आडम्बरहीन था। काव्य में भी वह ऐसे ही निश्चल और समर्पित हैं जो सरल भाषा में सत्य की अभिव्यक्ति करने में अत्यंत कुशल और दक्ष हैं। इनके भाव सत्य की प्रतिमूर्ति स्वरूप हैं। सत्य की अनुभूति की जितनी सशक्त अभिव्यक्ति किसी रचना में सम्भव है, पर रैदासजी की रचनाओं में मिलती है। इसलिए, कई विद्वानों ने रविदास जी को कबीर से भी अधिक भाव-प्रवण कवि माना है। साहित्यक दृष्टि से भी उनकी रचनाएं एक ऐसे लोक-साहित्य का द्योतक हैं जो जन-मानस से इतनी गहराई से जुड़ी है कि उसका व्यापक प्रभाव आज भी देखने को मिलता है।

रविदास जी की रचनाएं लिखित रूप में नहीं थीं। वह तो मस्ती में झूमकर गा उठते थे। इसलिए उनकी बानियां अधिकांशतः गेय पदों के रूप में हैं और उनकी यह खूबी है कि उनके सभी पदों के साथ किसी न किसी राग का संबंध है। रैदास जी के काव्य में मुख्यतः पद और दोहा-चौपाई छन्दों का ही प्रयोग हुआ है किन्तु, इनके अलावा उनके काव्य में कुछ उलटबासियां भी देखने को मिलती हैं। उलटबासियां वे रचनाएं हैं जिनमें किसी बात को प्रत्यक्ष रूप में, विपरीत या ऊट-पटांग ढंग से कहा जाता है। किन्तु यदि उनमें प्रयुक्त शब्दों के गूढ अर्थों को समझ लिया जाए तो सारा रहस्य खुल जाता है और कवि का भाव पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है। उनकी एक उलटबासी द्रष्टव्य है :—

'चंद सूर दोह सनमुख होई, पीवै प्याला मरै न कोई।
सहज-सुन्न में भाठी सखै पीवै रैदास गुरुमुख दखै।'

यूं रविदास जी के कांव्य में रस हैं, अनेक अलंकारों की छटा भी उनकी रचनाओं में देखने को मिलती है। किन्तु, चूंकि उनका उद्देश्य काव्य की रचना करना नहीं था और काव्य की परम्परा तथा उसके शास्त्रीय पक्ष का कोई ज्ञान उन्हें नहीं था, इसलिए उनके काव्य में प्रयुक्त अलंकार काव्य-रुढ़ियों पर आधारित नहीं है। उनकी रचनाएं जन भाषा में और जनता के लिए हैं इसलिए उनके काव्य में प्रयुक्त सारे, उपमान सामान्य जीवन से लिए गए

हैं, जिनको समझने में जन-सामान्य को किसी प्रकार की कोई कठिनाई प्रायः नहीं होती।

हम यह कह सकते हैं कि रैदास जी का काव्य एक उन्मुक्त हृदय की वाणी है, इसलिए न तो उसे शास्त्रीय सीमा में बांधा जा सकता है और न ही साहित्य की परम्परागत कसौटियों के आधार पर उसका मूल्याकंन ही किया जा सकता है। उनकी काव्य रचना का यह उद्देश्य था भी नहीं। वह तो जनता के बीच रहकर जनता की बात करने वाले संत थे। और यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि रैदास जी की बानियां सामान्य जनता के हृदय को पूरी तरह छूती हैं और इसीलिए, उनका इतना व्यापक प्रभाव भी दिखाई देता है। रैदास जी की रचनाओं में पाण्डित्य नहीं है, किंतु लोक-मानस को आंदोलित करने की क्षमता उनमें है। काव्य का असली गुण उसकी सम्प्रेषणता है। कवि जो कुछ कहता है पाठक या श्रोता, उसे सही-सही ग्रहण कर पा रंहा है या नहीं यही उसके मूल्यांकन की वास्तविक कसौटी है। और रैदास जी के विषय में यह बात बड़े साफ तौर पर कही जा सकती है कि उन्होंने लोक मानस को प्रभावित किया है और इसका तात्पर्य है कि उनका संदेश लोक-जीवन तक पहुंचा है। यही उनकी उपलब्धि है। इस दृष्टि से रैदास जी की रचनाओं को उच्च स्तर का काव्य और रैदास जी को एक 'श्रेष्ठ', सम्पन्न और समर्थ कवि कहा जाएगा।

सी-19, डीडीए फ्लैट्स, ईस्ट आफ लोनी रोड, शाहदरा, दिल्ली-110093

चलती चाकी देखकर दिया कबीरा रोय
दो पाटन के बीच में साबित बचा न कोय।

—कबीर

ऋषि तुल्य साहित्यकार—बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय

—डॉ. शुभंकर बनर्जी

सन् 842 ई. में बंगाल के नरेश आदिशूर ने एक महान यज्ञ का आयोजन किया। यज्ञ के लिए कान्यकुब्ज प्रदेश से पंडित दक्ष चट्टोपाध्याय को आमंत्रित किया गया। यज्ञ के बाद इस परिवार ने बंगाल में ही बस जाने का निर्णय लिया। बाद में 18वीं पीढ़ी के इस चटर्जी (चट्टोपाध्याय) वंश के 'फूलिया' नाम के एक अति कुलीन घराने के पूर्व पुरुष थे अवस्थी गंगानन्द। उन्हीं की 8वीं पीढ़ी में सन् 1838 में भारतीय साहित्य में क्रांति का संदेश देने वाले लेखक, बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय का जन्म हुआ। बंगाल के चौबीस परगना जिले के काटालपाड़ा ग्राम में साहित्य के प्रकाश-स्तंभ का जन्म हुआ।

बंकिम चन्द्र राय बहादुर होने के साथ-साथ अंग्रेजी सरकार के उच्च पदाधिकारी भी थे। उन्होंने सी.आई.ई. की परीक्षा पास की। परंतु अंग्रेज़ी शासन के अत्याचारों का उन्होंने जम कर विरोध भी किया। फिर भी अपनी कर्त्तव्य-निष्ठा तथा न्याय परायणता की वजह से अंग्रजों के आदर-सम्मान के भी पात्र रहे। जबकि उस समय भारतीयों की सामाजिक दशा काफी दयनीय थी। अतः बंकिम चन्द के स्वभाव से अंग्रेजों की शासन व्यवस्था चिंतित भी हो जाती थी। अनैतिक कार्य करने वाले लोगों के लिए (चाहे वे अंग्रेज हों या काले भारतीय) उनका नाम ही काफी था। समाज में उनके दबदबे की स्थिति यह थी कि उनके साथ किसी अंग्रेज का मुकदमा पड़ जाने पर कलकत्ता-बार में उनके विरुद्ध लड़ने वाला कोई वकील ही नहीं मिला। उस अंग्रेज की हार अपने आप ही हो गई।

अंग्रेजी सरकार से आतंकित तथा पाश्चात्य चकाचौंध से मुग्ध पराधीन भारतीय समाज में जो बाबू-युग की शुरुआत हुई बंकिम ने मानो उसके मूल में ही कुठारघात किया। अपनी कलम की नोक पर उन्होंने भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता की धाक फिर से जमा दी तथा यह सिद्ध कर दिया कि भारत इस मामले में किसी भी परिस्थिति में पाश्चात्य सभ्यता से कम नहीं है।

साहित्य के द्वारा राष्ट्रीय भावना को जागृत करके क्रांति का संदेश फैलाने की महत्वपूर्ण भूमिका उन्होंने उस समय अदा की जब अंग्रेजों के विरुद्ध लिखने की बात तो दूर बोलने का भी साहस कोई कर नहीं पाता था। अंग्रेजी शासन क उच्च पदाधिकारी होते हुए भी कलम चला कर अंग्रेजों के स्वेच्छानुसार से लोहा लेने की हिम्मत करना उस समय एक अनोखी बात ही थी।

उनके समकालीन महापुरुषों में भी उनका बहुत आदर था। पं. ईश्वर चंद्र विद्यासागर, मधुसूदन दत्त, रमेश चंद्र दत्त, केशव चंद्र सेन जैसे महान लोगों के बीच उनका

स्थान बहुत सम्मान जनक था। कविगुरु रवीन्द्रनाथ ने अपनी किशोरावस्था में ही बंकिम चन्द्र से मुलाकात कर ली थी तथा उनके स्वाभिमानी व्यक्तितत्व तथा रोबीले स्वभाव से काफी प्रभावित भी हुए।

बंकिम चन्द्र का सामाजिक तथा दार्शनिक ज्ञान का आधार बहुत ही मजबूत था। उनके 'कृष्ण चरित्र' 'धर्म तत्व' तथा 'श्रीमद्भगवत गीता' पर टीका एवं विवेचना से यह बात स्पष्ट हो चुकी थी कि भारतीय दर्शन पर उनकी पकड़ बहुत ही मजबूत थी।

उन्होंने जननी जन्म भूमि के प्रति देशवासियों के प्रेम को जागृत करने के लिए राष्ट्रीय गान 'वंदेमातरम्' की रचना की। उनके उपन्यास 'आनन्द मठ' में उन्होंने इस रचना का सर्वप्रथम प्रयोग किया। बाद में इसी रचना में आगामी भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के मूल प्रेरणा स्रोत की भूमिका अदा की। विदेशी आक्रमणों तथा पराधीनता के सिलसिले में जकड़ा हुआ भारतीय समाज में उन्होंने भारतीय दर्शन के मूल मंत्र का संचार किया।

उस समय भारतीय रूढ़िवादी परम्पराओं, अंधविश्वासों, कुरीतियों, कुप्रथाओं तथा धार्मिक कट्टरपंथियों के जाल में बुरी तरह से जकड़ा हुआ था। बंकिम की रचनाओं ने असहाय जनता में स्वावलंबन, स्वाभिमान तथा देश प्रेम को अमर ज्योति जला दी। उन रचनाओं ने न केवल तत्कालीन समाज में प्रेरणा का स्रोत पैदा किया बल्कि आज भी सामाजिक-आर्थिक, धार्मिक तथा राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिक है।

बंकिम की रचनाओं ने उन्हें भारतीय समाज में ऋषि का स्थान प्रदान किया। राष्ट्रीय संघर्ष, जमींदारी-उन्मूलन, पर्दा-प्रथा, स्त्री-शिक्षा, बहु-विवाह, महिलाओं तथा दलितों की दयनीय दशा, राजनैतिक शोषण, सामाजिक-आर्थिक विषमता, समतावादी दृष्टिकोण तथा जन-जागरण पर उन्होंने लगातार रचनाएं की। न केवल अंग्रेजी में बल्कि बांग्ला भाषा में भी उन्होंने साहित्य का सृजन किया।

भारतीय साहित्य में आत्मविश्वास की नवीन धारा का संचार करने की वजह से उनका स्थान तत्कालीन साहित्य में आदिगुरू का ही रहा। आने वाले दिनों में भी साहित्यिकों, निर्भीक समालोचकों तथा सुधारकों के लिए बंकिम चंद्र प्रेरणा के स्रोत रहे।

बंकिम साहित्य के उपन्यासों, निबंधों, प्रहसनों एवं व्यंगों, उनके पत्र 'बंग दर्शन' में प्रकाशित धार्मिक विवेचनों से न केवल साहित्य सुलभ स्वस्थ मनोरंजन ही प्राप्त है, बल्कि घर तथा बाहर, नित्य प्रस्तुत किए जाने वाले उलझनों तथा धर्म संकटों में, चिरंतन पथ प्रदर्शक कालजयी रचनाएं भी हैं।

खास करके अबला नारी चरित्र को उन्होंने सबला नारी शक्ति का रूप प्रदान किया। माता तथा मातृ भूमि को उन्होंने कहा "के बले तुमि मां अबले (कौन कहता है मां तुम अबला

हो)"। मातृ शक्ति को उन्होंने बहुबलधारिणी मूल शक्ति माना तथा अपने कालजयी साहित्य से इस बात को प्रमाणित करने का भी सफल प्रयास किया। दूसरी भाषा में उन्हें साहित्यिक विद्या में सामाजिक क्रांति का संदेश प्रदान करने वाले ऋषि का स्थान देना भी अनुचित नहीं होगा।

ऋषि स्वरूप महान साहित्यकार बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय का देहांत 1894 में 56 वर्ष की अवस्था में हुआ।

सचिव 'शांति मिशन' ए-46, सादतपुर, करावल नगर रोड, दिल्ली-110094

गुण का सच्चा मानदंड मन में स्थित है। जिसके सत विचार हैं वे सत्पुरुष हैं।

—आइजक बिकरस्टाफ

भारत की न्यायपालिका का स्वरूप

—डॉ. प्रमोद कुमार अग्रवाल

भारत के संविधान में मूलतः संघीय शासन-व्यवस्था का प्रावधान है पर केंद्र एवं राज्यों के विधानों को लागू करने के लिए न्यायपालिका का एकीकरण किया गया है। न्यायपालिका के सर्वोच्च शिखर पर उच्चतम न्यायालय है तथा उच्च न्यायालय के अधीन कई स्तरों पर जिला न्यायालय हैं। कुछ राज्यों में पंचायत न्यायालय, न्याय पंचायतें, पंचायत अदालतें या ग्रामीण न्यायालय हैं, जो स्थानीय स्तर पर छोटे-छोटे दीवानी एवं फौजदारी झगड़ों का निपटारा करते हैं।

राज्य जिलों में विभाजित हैं। जिला-स्तर पर न्यायपालिका का प्रमुख जिला एवं सेशन जज कहलाता है। वह दीवानी एवं फौजदारी के सभी मुकदमें निबटा सकता है। उसके नीचे दीवानी क्षेत्र में मुंसिफ, सब-जज एवं सिविल जज को अदालतें रहती हैं। आजकल उन्हें सिविल जज (जूनियर) या सिविल जंज सीनियर की संज्ञा दी जाती है। फौजदारी के क्षेत्र में मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट एवं जुडीशियल मजिस्ट्रेट प्रथम एवं द्वितीय श्रेणी के होते हैं।

भारतीय संविधान में न्यायपालिका की स्वतंत्रता को अक्षुण्ण रखा गया है। शासन में शक्ति के पृथक्करण के सिद्धांत की माना गया है। इसका अर्थ यह है कि राज्य के तीनों अंगों—कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका के कार्य अलग-अलग हैं और किसी भी अंग को दूसरे अंग के कार्यों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है। यदि इस सिद्धांत का शासन-प्रणाली के प्रचलन में इस्तेमाल हो, तो शासन में अत्याचार की गुंजाइश नहीं होगी। इस सिद्धांत के अनुसार कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में और न्यायिक शक्तियां न्यायपालिका में निहित हैं। पर भारत के संविधान में शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त को इसके कठोर रूप में स्वीकार नहीं किया गया है ताकि राज्य का एक अंग अनियंत्रित न हो जाए एवं स्वयं को 'स्वयंभू' घोषित न कर दे। यही कारण है कि संविधान में 'चैक एवं बैलेंस' के सिद्धांत को ग्रहण किया है जोकि भारतीय संस्कृति के समन्वयकारी सिद्धांत का विधि रूपक ही है। इस सिद्धांत के अनुसार राज्य का एक अंग दूसरे अंग के प्रधान कार्यों को आत्मसात नहीं करेगा। हमारा संविधान राज्य के एक अंग या भाग द्वारा उन कार्यों के जो आवश्यक रूप में दूसरे के हैं, अधिग्रहण की अनुज्ञा नहीं देता है। दूसरे राज्य का कोई अंग अनावश्यक रूप से शक्तिशाली होकर स्वच्छन्द न हो जाए।

विधि के शासन की स्थापना ही राज्य के तीनों अंगों का उद्देश्य है। विधि के शासन का उद्घोष है—'आप कितने ही ऊंचे हो, विधि आपसे ऊपर है।' विधि शासन आज के कल्याणकारी राज्य में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। कार्यपालिका विधिक शासन-स्थापना में पहरेदार का काम करती है। विधि-शासन में :—

1368 HA/2000—6A

1. विधि समुचित रूप से स्थिर एवं सुलभ होनी चाहिए।
2. विधि उपयोगी होनी चाहिए।
3. न्यायपालिका और विधि-व्यवसाय की स्वतंत्रता सुनिश्चित होनी चाहिए।
4. नैसर्गिक न्याय के नियमों का अनुपालन होना चाहिए।
5. न्यायपालिका को प्रशासनिक कार्यों के पुनरीक्षण का अधिकार होना चाहिए; तथा
6. न्यायालय सबके लिए खुले होने चाहिए। प्रक्रिया सम्बन्धी तकनीकीपन और मुकदमों पर होने वाले व्यय पर नियंत्रण होना चाहिए।

अतः जिस प्रकार प्रजातंत्र-प्रणाली राजनीति के क्षेत्र में कार्यपालिका के कार्यों को नियंत्रित करती है उसी प्रकार विधि-शासक व्यवस्था न्यायपालिका के माध्यम से नागरिकों को शोषण से दूर रखती है। वस्तुतः प्रजातंत्र एवं विधि-शासन एक दूसरे के पूरक है एवं विधि के शासन की व्यवस्था प्रजातंत्र प्रणाली में सुगमता से सम्भव है।

भारतीय संविधान लागू होने के पश्चात न्यायपालिका का यह निरतंर प्रयास रहा है कि वह विधि की व्याख्या स्थिर, सुलभ एवं जन उपयोगी रूप में कर सके। संविधान द्वारा स्थापित व्यक्ति के मौलिक सिद्धांतों एवं राज्यों के नीति निदेशक सिद्धान्तों का सुन्दर समन्वय करते हुए उच्चतम न्यायालय ने व्यक्ति एवं समाज के हितों में सामंजस्य स्थापित किया, ताकि कुछ शक्तिशाली व्यक्ति अपने निहित स्वार्थों के लिए नव-स्थापित भारत-राज्य के साथ खिलवाड़ न कर सकें। हम निम्न शीषर्क के अंतर्गत न्यायापालिका के इस महान स्वरूप का दिग्दर्शन कर सकते हैं।

(क) भूमि सुधारों का संरक्षण

तत्कालीन भारत के मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति श्री गजेन्द्र गडकर का मत था कि यदि बहुसंख्यक भूमिहीनों को जमीन पर खेती करने का अधिकार नहीं सुनिश्चित किया जा सका, तो लोकतंत्र ही खतरे में पड़ जाएगा। कई भूमि-स्वामी अपने धन एवं ज्ञान के बलबूते पर सर्वोच्च न्यायालय गए, पर वे प्रायः खाली हाथ ही वापिस लौटे। जमींदारी उन्मूलन सम्बन्धित जितने विधेयक थे, उनको संविधान की नौंवी सूची में सम्मिलित करने को वैध ठहराया गया एवं उन्हें कानून की वैधता चुनौती प्रक्रिया से भी बाहर कर दिया गया। इस प्रकार 1951 में शंकरी प्रसाद सिंहदेव जैसे सभी प्रशासन जमींदारों एवं भूमि-मालिकों को करारी हार खानी पड़ी। उच्चतम न्यायालय के विद्वानों, न्यायाधीशों ने संविधान निर्माताओं की संविधान निर्माण प्रक्रिया का अध्ययन करके यह व्याख्या दी कि भूमि सुधार कार्यक्रम का एक प्रमुख लक्ष्य संविधान-सभा के समक्ष था। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश कानूनी तकनीकियों एवं बारीकियों में नहीं गए, बल्कि उन्होंने भूमिहीनों का जमीन पर उनके न्यायसंगत अधिकार की पुर्नस्थापना करने का पवित्र संकल्प किया। यही कारण था कि विभिन्न राज्यों की विधायिकाओं ने 1950 से 1967 के मध्य देश में भूमि सम्बन्धी क्रांति लाने के उद्देश्य से अनेक

1368 HA/2000—6B

विधेयकों, अधिनियमों को पास किया, जिससे देश के ग्रामीण भाग में स्थिरता एवं समृद्धि का परिवेश उत्पन्न हुआ जिसका फल हम आज भी भोग रहे हैं। पर 1967 तक आते-आते हमारे उच्चतम न्यायालय को तकनीकी विशेषताओं का सम्मान करना पड़ा और सम्पत्ति या 'पूंजी' रखने वालों के वर्चस्व को गोलकनाथ मामले में कुछ राहत मिली। पर न्यायमूर्ति श्री हिदायत उल्ला ने कहा, "मैं व्याकरण व्याख्याता का काम करने नहीं आया हूं।" सर्वोच्च न्यायालय ने फिर बैंक राष्ट्रीयकरण एवं प्रिवी पर्सों के मामलों में व्यक्ति के स्थान पर समष्टि का समर्थन किया। इस प्रकार भारत की संसद एवं सर्वोच्च न्यायालय देश के कल्याणकारी राज्य की स्थापना में परस्पर पूरक थे। पच्चीसवें संविधान संशोधन के द्वारा 'सम्पत्ति के अधिकार' को अनुच्छेद 31 में प्रायः प्रभावहीन ही कर दिया गया तथा राज्य के नीति निदेशक तत्वों को प्राथमिकता प्रदान की गई। ये सभी प्रश्न प्रथम तथा बत्तीसवें संविधान के द्वारा केरल प्रदेश के दो और भूमि-सुधार अधिनियमों को संविधान की नौंवी सूची में शामिल करने का प्रश्न केशवानन्द भारती मामले (1993) में उठे तथा सर्वोच्च न्यायालय ने अपने ऐतिहासिक निर्णय में उन्नीसवें संशोधन को वैध माना, पर कहा कि संविधान की मूल संरचना को संविधान संशोधन क्षमता के माध्यम से संसद द्वारा नहीं बदला जा सकता है। इस निर्णय के द्वारा, सर्वोच्च न्यायालय ने केवल न्यायिक पुनर्विलोकन को अपने पास रखा ताकि अनुच्छेद 39(ख) एवं (ग) के माध्यम से संसद भारत में साम्यवादी व्यवस्था न लागू कर दे एवं संविधान को एक ओर न रख दे। परंतु उच्चतम न्यायालय लोकहित में सरकार द्वारा उठाए गए पदक्षेपों का निरंतर समर्थन करता रहा है। यहां तक कि बंधुआ मुक्ति मोर्चा जैसे मामलों में तथा दूसरी ओर मेनका गांधी मुकदमे (1978) के फैसले में कहा—"कैसे सम्पत्ति का अधिकार, वाक्—स्वातंत्र्य के अधिकार का अंग हो सकता है जबकि संसद में सम्पत्तिहीनों की संख्या सम्पत्ति वालों से कम है।"

अंत में सम्पत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकार की सूची से संसद ने हटा लिया और अब यह केवल एक संवैधानिक अधिकार बन कर ही रह गया है। इस उपलब्धि में सर्वोच्च न्यायालय का अन्यतम् योगदान है। न्यायालय ने अंततोगत्वा गतिशील राज्य के नीति-निदेशक तत्वों को अनुदार मौलिक अधिकारों के ऊपर प्राथमिकता प्रदान की, जो अभी भी देश का विधि-विधान है।

(ख) धर्मनिरपेक्षता की स्थापना

न्यायमूर्ति गजेन्द्र गडकर ने सैयफुद्दीन साहेब मुकदमे (1962) में कहा कि केवल आवश्यकीय रीति-रिवाज ही धर्म के अंग माने जाएंगे। मंदिरों, मस्जिदों गिरजाघरों अथवा दरगाहों का प्रबंध अनुच्छेद 25 एवं 26 के अंतर्गत आवश्यकीय या मौलिक धार्मिक कार्य नहीं है। सन् 1976 में 'धर्मनिरपेक्ष' राज की अवधारणा संविधान की उद्देशिका में सम्मिलित किए जाने के बाद तो सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों को विधायिका का पूर्ण समर्थन प्राप्त हो गया है एवं देश में धर्म निरपेक्षता स्थापित हो गई है। राज्य किसी भी धर्म का पृष्ट-पोषण नहीं करेगा एवं सभी धर्मों से समान दूरी रखेगा।

(ग) अत्यधिक आरक्षण का प्रतिवाद

उच्चतम न्यायालय ने विभिन्न निहित स्वार्थों को संतुष्टि के लिए अत्यधिक आरक्षण पर गहरा प्रहार किया तथा पचास प्रतिशत से अधिक सरकारी नौकरियों, विद्यालयों एवं संस्थाओं में आरक्षण के लिए कठोर मानदंड स्थापित किए तथा उत्तम आर्थिक परिस्थिति वालों (क्रीमी लेयर) को इस श्रेणी से दूर करने का सलाह दी। जहां उच्चतम न्यायालय जाति, एवं व्यवसाय अथवा स्थान पर आधारित पिछड़ेपन या अभाव को उचित मान्यता देता है, वहां राज्य को चलाने में योग्यता की भी पूरी तरह उपेक्षा सहन नहीं करता है—विशेषतः डाक्टरी जैसे तकनीकी क्षेत्रों में इन्दिरा साहनी बनाम भारत संघ (मंडल मामला) में उच्चतम न्यायालय ने 1992 में निर्णय दिया;

'अनुच्छेद 335 के सम्बन्ध में हमारा विचार है कि कुछ सेवाएं और पद ऐसे हैं, जहां उनसे संबंधित कर्त्तव्यों या उस स्तर (अनुक्रम में) जहां वे प्राप्त होते हैं, यहां उपरोक्त बताई गई योग्यता पर ही केवल विचार किया जाता है। ऐसी परिस्थितियों में, आरक्षण का प्रावधान करना समझदारी नहीं होगी। उदाहरणस्वरूप, अनुसंधान एवं विकास संगठनों/विभागों/संस्थानों में तकनीकी पदों में और चिकित्सा, इंजीनियरिंग और शारीरिक विज्ञान एवं गणित एंव गणित में अन्य ऐसे पाठ्यक्रमों में विशेषज्ञता और इति विशेषज्ञता, रक्षा सेवाओं और इससे संबंधित स्थापनाएं/ऐसे ही, उच्चतम सोपानकों अर्थात् प्रोफेसर (शिक्षा में) इंडियन एयरलाइन्स और एयर इंडिया—में पायलट्स नाभिकीय और अंतरिक्ष प्राद्योगिकी वैज्ञानिकों और तकनीशियनों के मामलों में और आरक्षण के लिए प्रावधान करना समझदारी नहीं होगी।"

हाल ही में मोहनवीर चावला पंजाब विश्वविद्यालय (1997) के निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने अपनी स्थिति दोहराते हुए कहा—'स्पष्ट और उपयुक्त नियम है : किसी भी अनुशासन में जितना ऊंचा आप जाते हैं, उतना ही किसी भी प्रकार का कम आरक्षण होना चाहिए।"

प्रशासनिक विवेक शक्ति पर नियंत्रण

प्रशासन की जटिलता ने विधानमण्डल को प्रशासनिक अधिकारियों को विवेक शक्ति देने या स्वप्रेरणा से कार्य करने की अनुमति देने के लिए बाध्य कर दिया है। कुछ निर्णय परिस्थितियों के संदर्भ में स्थान विशेष पर ही किए जा सकते हैं। कई सम्भावनाओं को पहले से जान पाना भी सम्भव नहीं होता है। उदाहरण के तौर पर देश की रक्षा, आवश्यक वस्तुओं के संदाय को बनाए रखना अथवा लोक व्यवस्था या आम शांति के लिए यह जरूरी है कि केवल उन व्यक्यिों को, जो इस काम में बाधा डाल रहे हैं या जिनसे ऐसी बाधा की आशंका है, रोका जाए। यह कार्य लोक हित में जरूरी है। ऐसे व्यक्तियों की सूची पहले से नहीं बन सकती, इसलिए निवारक निरोध या निरोध करने की शक्ति प्रशासनिक अधिकारियों को देना अनिवार्य है। ऐसे प्राधिकारी अपनी विवेक शक्ति के आधार पर निरोध आदेश देते हैं। किन्तु विवेक

का अर्थ मनमानी नहीं है। यदि इस विवेक का मनमाने तौर पर प्रयोग किया गया हो तो इस पर नियंत्रण हो सकता है। प्रशासनिक विवेक की सीमा में रखने तथा उसको उचित रूप में लागू कराने का प्रश्न बहुत कठिन प्रश्न है। इसका कारण यह है कि विवेक प्राधिकारी का है, न कि न्यायालय का। अतः न्यायालय प्रशासनिक विवेक को न्यायिक विवेक से नहीं बदल सकते हैं। साथ ही विवेक वाला प्राधिकारी स्वच्छन्द या पूर्णरूप से स्वतंत्र भी नहीं है। यहां पर विवेक का अर्थ व्यक्तिगत रूझान या चाव ने नहीं है। प्रश्न उठता है कि न्यायालय किस आधार पर विवेक को नियंत्रित करेंगे।

प्राय विवेक प्राप्त अधिकारी को शक्ति के प्रयोग में नीचे लिखी शर्तों को पूरा करना पड़ता है।

(1) अधिकारी को दरअसल अपने दिमाग का प्रयोग करना चाहिए।
(2) विवेक का प्रयोग ईमानदारी से किया जाना चाहिए।
(3) विवेक का प्रयोग सीधे और सम्बन्धित आधार पर किया जाना चाहिए।

अशोक कुमार यादव (1985) मुकदमे में सर्वोच्च न्यायालय ने जोर दिया कि विशुद्ध प्रशासनिक कार्यों मे भी नैसर्गिक सिद्धांत लागू होंगे।

पर एस.आर. बोम्माई के मामले में (1994) सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय देकर खलबली मचा दी कि राष्ट्रपति शासन की घोषणा भी न्यायापालिका के दायरे में आती है और वह इसका औचित्य देख सकता है।

(च) जनहितकारी मुकदमें

जनहितकारी मुकदमों का आरंभ सन् 1976 में न्यायमूर्ति कृष्ण अय्यर ने मुम्मई कामगर सभा मुकदमें से किया। आजकल इन मुकदमों का आयाम जीवन एवं समाज के प्रत्येक क्षेत्र में फैल गया है। इसका उद्देश्य लोकहित मुद्दों का अदालत द्वारा सुनिश्चित करना है। इसी क्रम में मानव अधिकार सुरक्षा अधिनियम, 1993 पास हुआ, जिसने भारतीय नागरिकों के अधिकारों को वैधानिक रूप में गरिमा प्रदान की। इन मुकदमों के माध्यम से जहां सैकड़ों शहरों की झुग्गी झोपड़ियों में रहने वालों को उचित अधिकार एवं सुविधाएं प्राप्त हुईं, हजारों बंधुआ मजदुर मुक्त हुए, हजारो मजदूरों को उनके न्यायसंगत अधिकार मिले, नदियों के निर्मलीकरण को गति प्राप्त हुई, वहां दूसरी और मंत्रियों के विवेकाधीन कोटे का अन्यायपूर्ण इस्तेमाल करके मकानों के आबंटन को रोक लगी एवं हवाला मामलों में राजनीतिकों एवं नौकरशाहों का हल भी इनके द्वारा निकला। पर आजकल जनहितकारी मुकदमें फैलते जा रहे हैं तथा जिला न्यायालय भी इस प्रकार के मुकदमें सुनने लगे हैं एवं फैसले देने लगे हैं उससे स्थानीय प्रशासन, नगरपालिकाएं एवं पंचायत संस्थाएं सकते में आ गई हैं क्योंकि उनके पास अदालतों के आदेशों का पालन करने के लिए आवश्यक धनराशि नहीं है। ऐसी

ही हालत में कुछ-कुछ राज्य सरकारों की भी हो रही है। जनहितकारी मुकदमों का क्षेत्र इस सीमा तक बढ़ गया है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को तथा दूसरे न्यायाधीशों को अधिक सुविधाओं तथा स्टाफ कार देने के लिए जनहित मुकदमें उच्च न्यायालय/उच्चतम न्यायालयों में फाईल किए जा रहे हैं। यद्यपि उच्चतम न्यायालय ने उस प्रकार के मुकदमों की सुनवाई के लिए उपयुक्त दिशा-निर्देश जारी किए हैं पर किसी न किसी बिंदु पर जगह निकालकर उन्हें सुन लिया जाता हैं। उच्चतम न्यायालय के अनुसार ये मुकदमें केवल गरीब एवं कमजोर जनता के हित में, मानव अधिकारों के सरंक्षण के लिए उस व्यक्ति के द्वारा मुकदमा दायर होना चाहिए जिसका सामाजिक हित में सुने जाने का अधिकार हो। (आनन्द बनाम देवगौड़ा (1996) उच्चतम न्यायालय ने ऐसे कई वादकारों को दंडित किया है जो तथाकथित जनहित के मामले उठाकर केवल अपनी सस्ती लोकप्रियता या ख्याति चाहते हैं तथा अनावश्यक रूप से अदालतों का बहुमूल्य समय एवं सरकारी धन बर्बाद करते हैं क्योंकि अदालतों के पास ऐसे ही वादों का ढेर लगा हुआ है। यह न हो कि ये केवल जन प्रचार मुकदमें हो जाएं।

लंबित मुकदमें

आजकल भारतीय न्यायपालिका की सबसे बड़ी समस्या विभिनन अदालतों में लंबे समय से चलते आये मुकदमें हैं। उच्चतम न्यायालय सन् 1991 की अपेक्षा इन मुकदमों की संख्या 1.05 लाख से अप्रैल, 1999 को 19,834 तक घटाकर ले आए हैं, वही उच्च न्यायालय में यह संख्या घटने का नाम नहीं ले रही है एवं आज भी दिसम्बर, 98 में यह संख्या लगभग 32 लाख मुकदमों की है जबकि जिला न्यायालयों में (संपूर्ण देश में) इन लंबित मुकदमों की संख्या दिसम्बर '98 तक प्रायः दो करोड़ है। दस वर्ष की अवधि से उच्च न्यायालयों में लंबित मुकदमों की संख्या प्रायः 4.55 लाख है तथा निचली अदालतों में तीन वर्ष से अधिक समय के लिए लंबित मुकदमों की संख्या लगभग पचास लाख है। यद्यपि अदालातें के प्रयास से लंबित मुकदमों में कमी आ रही है पर यह आशा नहीं है यदि न्यायापालिका की अन्य अदालतों ने सर्वोच्च न्यायालय का आदर्श नहीं माना जात ये अदालते मुकदमों के भार से स्वयं दब जाएगी जैसा कि पार्किन्सन नौकरशाही के लिए कहता है कि नौकरशाही स्वयं में व्यस्त रहती है। जनता की न्याय-व्यवस्था में तेजी से आस्था का ह्रास होता जा रहा है क्योंकि एक बार मुकदमा दायर करने से उसे अदालतों एवं वकीलों के दर-दर भटकना पड़ता है एवं उसके हाथ आता है केवल अंतरिम आदेश, स्थगन आदेश या अगली सुनवाई की तारीख तथा वकील का मोटा-बिल।

इस गंभीर समस्या का निदान करने के लिए कई आयोगों, कमेटियों एवं विधि आयोग ने सिफारिशें की जिनको न्यायिक सुधारों की संज्ञा दी जाती है। इसी क्रम में मालीमथ कमेटी ने जनवरी, 1989 में कुछ क्रांतिकारी सुझाव दिए। अनेक उच्च न्यायालयों ने इनमें से कई सिफारिशों को अपनाकर उच्च-न्यायालय के नियमों में अभूतपूर्व संशोधन किए हैं ताकि उच्च न्यायालय में लंबित मुकदमों को श्रेणियों में विभक्त करके एक साथ सुना जा सके।

कई समय परक प्रक्रियाओं को सरल कर दिया गया हैं, अदालतों के कर्मचारियों द्वारा नोटिस भेजे जा रहे हैं तथा फोटोस्टेट निर्णयों को अदालतों में स्वीकार किया जा रहा है। यह भी आदेश दिए जा हैं तथा फोटोस्टेट निर्णयों को अदालतें अनावश्यक स्थगन तारीखें न दें। स्थगन-आदेश पारित करने के पूर्व विपक्ष को उपयुक्त सूचना दें, तथा लंबे निर्णय न लिखें तथा आरक्षित निर्णय एक समय सीमा में दें। पुराने मुकदमों को प्राथमिकता के आधार पर सुने तथा मुकदमों के स्वीकार करने के पूर्व उनकी तीसरे व्यक्ति द्वारा जांच हो ताकि अनावश्यक रूप से सारहीन मुकदमों से अदालतें बोझिल न हो। छोटे-छोटे मुकदमों की सुनवाई के लिए पृथक मजिस्ट्रेटों की नियुक्तियां हो रही हैं ताकि अदालतों के सामने केवल महत्वपूर्ण मुकदमों जाए। इसके अतिरिक्त अदालत के बाहर मुकदमों को पंच फैसले अथवा परस्पर वार्तालाप द्वारा सुलझाने विधान बनाए गए हैं। अदालतों के बाहर भी मुकदमें सुनने एवं उनका फैसला देन का प्रावधान बनाया गया ताकि दोनों पक्ष आपस में सुलह-मशविरा करके वाद का शीघ्र निबटारा कर लें। लोक अदालतों ने सन् 1995-96 में 6.20 लाख, 1996-97 में 9.42 लाख तथा 1997-87 में 9.45 लाख मुकदमों का निपटारा किया। पर जनसंख्या वृद्धि विभिन्न प्रकार के नए-नए अधिनियमों के लागे होने तथा जनता अपने अधिकारों के प्रति अत्यधिक संख्या होने के कारण दिन-प्रतिदिन अदालतों में और अधिक संख्या में मुकदमें दाखिल हो रहे हैं।

न्यायिक सुधार

न्यायपालिका को नया स्वरूप प्रदान करने के लिए न्यायिक सुधार की दिशा में निम्न पदक्षेप लिए गए हैं अथवा अपेक्षित हैं :—

1) दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 में संशोधन के लिए एक बिल 1977 से संसद के विचाराधीन है, जो न्यायिक सुधार प्रक्रिया में मील का पत्थर सिद्ध होगा। इसमें एक पक्ष को तीन से अधिक तारीखें लेने का अधिकार नहीं रहेगा तथा इसके द्वारा मुकदमे के प्रति चरण पर समय-समय निर्धारित है तथा एक चरण निरंतर चलेगा एवं आरंभिक नोटिस आदि वादकारी स्वयं विपक्षी को दे सकता है। इन सुधारों का अन्य सभी अधिनियमों पर दूरगामी प्रभाव पड़ेगा एवं हमारी न्यायपालिका गति से दौड़ने लगेगी।

2) आपराधिक प्रक्रिया संहिता में भी विधि आयोग की 154 वीं रपट के अनुपालन में अनेक संशोधन प्रस्तावित है। आशा है कि संसद इनको शीघ्रतिशीघ्र पास करके भारत की जनता की चिर-प्रतीक्षित आशा आकांक्षाओं को पूरा करेंगी एवं देश में कानून-व्यवस्था को मजबूत करेंगी। ऐसा ही एक बिल, 1994 से राज्य सभा में लंबित है।

3) इसी प्रकार विभिन्न प्रकार की विशेष अदालतों की स्थापना करके साधारण अदालतों का बोझ कम किया जा रहा है तथा इस प्रकार के अनेक न्यायालय या विशेष न्यायालय स्थापित हो चुके हैं जैसे :—

(क) उद्योग/श्रमिक संबंधी आयोग या न्यायालय।
(ख) किराया संबंधी प्राधिकरण।
(ग) केंद्रीय प्रशासनिक प्राधिकरण।
(घ) शिक्षा सहित अन्य क्षेत्रों में ऐसे विशिष्ट प्राधिकरण की स्थापना; इत्यादि।

4) उच्च न्यायालयों एवं जिला-न्यायपालिका में भी अनेक न्यायधीशों के पद रिक्त पड़े हैं। उच्च न्यायालायों में प्रायः बीस प्रतिशत स्थान सब समय रिक्त रहते हैं, जबकि जिला न्यायालयों में दस प्रतिशत। उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया जटिल है तथा न्यायाधीशों के लिए उचित अदालतें, कमरों एवं आवासों की व्यवस्था किए बिना उनकी नियुक्तियां करना कठिन होता है। जिला न्यायालयों में रिक्त स्थानों पर नियुक्तियों का काम राज्य सरकारों को इस दिशा में तत्परता दिखाने की आवश्यकता है। वैसे अमेरिका जैसे कई देशों में प्रत्येक दस लाख जनसंख्या के पीछे पचास न्यायाधीश तैनात रहते हैं जबकि भारत में यह अनुपात प्रायः 12 के लगभग है। प्रथम राष्ट्रीय न्यायिक आयोग ने न्यायिक अधिकारियों की सेवाशर्तों को उन्नत करने के लिए कई सुझाव दिए हैं। उनके लागू होने पर जिला स्तर पर न्याय क्षेत्र में नई जीवन संजीवनी आएगी। इस दिशा में सर्वभारतीय न्यायिक सेवा का अविलम्ब गठन सहायक सिद्ध होगा क्योंकि उससे न्यायपालिका में मेधावी युवक प्रवेश पा सकेंगे।

5) न्यायपालिका में आमूलचूल सुधारों के लिए तथा न्यायपालिका को जनता की आकांक्षाओं के अनुरूप बनाने के लिए सन् 1990 में राष्ट्रीय न्यायिक आयोग का प्रस्ताव किया था। इस ओर भी सभी का ध्यान आकर्षित है ताकि न्यायाधीशों की नियुक्तियों में और अधिक पारदर्शी आ सके एवं वे भी सुस्पष्ट आचार संहिता के अंतर्गत कार्य करें।

6) कई राज्य सरकारों ने ग्राम न्यायालयों का गठन किया है। विधि-आयोग ने अपनी 154वीं रपट में यह सिफारिश की है। आंध्र-प्रदेश मंडल न्याय पंचायत विधेयक, 1995 के आधार पर ग्रामीण न्यायालयों का गठन किया जा सकता है। उ.प्र. में ऐसे न्यायालों ने सफलता पूर्वक करोड़ों मुकदमों का कई वर्षों तक निष्पादन किया। कर्नाटक राज्य में ग्रामीण न्यायालय सफलतापूर्वक काम कर रहे हैं। संविधान में विकेंद्रीकृत पंचायत-राज व्यवस्था के आने के साथ-साथ उस प्रकार के न्यायालयों को आवश्कता और बढ़ जाती है।

7) उसके अतिरिक्त सरकारों की ओर से भी प्रचेष्टा हो कि कम से कम मुकदमा बाजी में फंसा जाए, क्योंकि सरकार ही आजकल सबसे बड़ी वादी या प्रतिवादी है। अदालतों कम्प्यूटर, फोटोस्टेट आदि हों, ताकि आधुनिक साधनों का उपयोग करके अदालतें अपनी गति तेज करें। सर्वोच्च न्यायालय की भांति उच्च न्यायालयों एवं जिला न्यायालयों में सहायता केंद्र हों, ताकि अल्प भुगतान करके कोई भी अपने मुदकमे की स्थिति पता लगा सके तथा उसे वकीलों के पास अनावश्यक दौड़-धूप न करनी पड़े।

सारांश :

संविधान में न्यायपालिका की स्वतंत्रता का अधिकार सन्निहित है। किसी भी उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीश को महाभियोग के बिना नहीं हटाया जा सकता है। अन्य जिला-न्यायालयों के न्यायाधीशों अथवा मजिस्ट्रेटों को भी उनके न्यायिक कार्यों के लिये अनेक विशिष्ट अधिकार एवं सुरक्षाएं है। पर न्यायाधीशगण समाज के प्रबुद्ध वर्ग होने के नाते समाज की दशा को कैसे अनदेखा कर सकते हैं? यह सत्य है कि न्यायालयों में अनेक पदों पर अतिरिक्त नियुक्तियां होनी चाहिए। पर क्या भारत जैसा निर्धन राष्ट्र अन्य क्षेत्रों की उपेक्षा करके न्यायपालिका में इतना निवेश कर सकता है? दूसरी ओर इसका हल यह भी है कि जर्मनी एवं जापान की भांति हमारे न्यायधीश कम घंटे वेतन लेकर अधिक घंटे काम करें या अपने निर्धारित सरकारी कर्तव्य से अधिक काम करें। उदाहरण के तौर पर यदि उच्च न्यायालयों का समय आधा घंटा अधिक बढ़ा दिया जाए, तो काफी लंबित मुकदमों का निष्पादन बिना किसी अतिरिक्त खर्चे में किया जा सकता है।

भारत के माननीय मुख्य न्यायाधीश ने दिसम्बर, 1998 में देश के सभी न्यायालयों से यह आग्रह किया है कि सात वर्ष से अधिक लंबित मुकदमों का निपटारा करके वे 1999 को 'कार्यवाई वर्ष' में परिणत करें तथा दिसम्बर, 1999 के बाद पांच वर्ष समय से अधिक लंबित मुकदमों को निपटायें। आशा है कि न्यायपालिका नये उत्साह से इस चुनौती का सामना करेगी एवं माननीय मुख्य न्यायाधीश के आदेश का अक्षरशः पालन करेगी।

न्यायपालिका शून्य में काम नहीं करती है। न्यायपालिका में किसी भी सुधार के लिए अनिवार्य है कि वकील, एडवोकेट आदि न्यायिक कार्य में लगे व्यक्ति भी इस महायज्ञ में सहयोग करें। अन्यथा भारत की जनता, जो सभी व्यवस्थाओं से निराश एवं दूर होती जा रही है, न्यायपालिका से भी दूर हटती जाएगी और भक्ति युग की भांति भगवान के भरोसे रहेगी। यह सत्य है कि हमारे देश की परम्परा भी देर-विलंब से कार्य करने की है पर यह आधुनिक काल में नही चल सकता है। वर्तमान परिदृश्य में हमें बैलगाड़ी की नहीं, अपितु राकेट की रफ्तार से चलना होगा। वादकारों को भी प्रारम्भ से अपने मुकदमों को तेज करने के लिए कमर कस के तैयार रहना पड़ेगा। वकीलों को भी मुवक्किलों तथा न्यायलयों के साथ इस आंदोलन में पूर्ण सहयोग करना पड़ेगा।

सभी के सहयोग से न्यायपालिका का चिर आकांखित स्वरूप हमारे सामने उभर कर आएगा तथा हमारी न्यायपालिका का भी देश में शांति एवं समृद्धि लाने में महान योगदान होगा।

संयुक्त सचिव (न्याय विभाग) गृह मंत्रालय, जैसलमेर हाऊस, नई दिल्ली-110011

हिंदी में विज्ञान कथा साहित्य

—ज्योति भाई

माइकल किचटन ने एक उपन्यास लिखा 'जुरासिक पार्क'। इस वैज्ञानिक उपन्यास पर स्पीलबर्ग ने जो फिल्म बनाई उसने सारी दुनिया में तहलका मचा दिया। हिंदीभाषी क्षेत्रों में सम्भवतः यह पहली विदेशी फिल्म है, जिसे लाखों लोगों ने देखा और सराहा। विज्ञान कथा पर आधारित इस फिल्म ने साबित कर दिया है कि आज आदमी साहित्य और फिल्म के परम्परागत ढर्रे से अलग कुछ और जानना समझना तथा देखना चाहता है।

जुरासिक पार्क के पूर्व भी विदेशों में विज्ञान कथाओं पर दर्जनों फिल्में बनी हैं और उनमें अनेक लोकप्रिय भी हुई हैं। एच. जी वेल्स के लिखे कथानक पर 'टाइम्स मशीन', स्टेनले कब्रिक के 'स्पेस ओडिसी' तथा एडगर एलन पो के चर्चित कथानकों पर रोचक फिल्में बनी हैं। इसी तरह 'लौलेरिस', स्टार वार्स, दस क्लोज एनकाउंटर्स आव थर्ड काइन्ड' एवं अन्तरिक्षवासियों पर बनी कुछ फिल्मों ने पश्चिमी जगत में अच्छी खासी लोकप्रियता हासिल की। विज्ञान जगत पर आधारित इन फिल्मों की लोकपिय्रता का कारण फिल्म निर्माण की कोई विशिष्ट शैली नहीं थी, अपितु वहां उपलब्ध प्रचुर विज्ञान कथा साहित्य और जनता में विज्ञान के प्रति बढ़ती ललक ही इसका प्रमुख कारण रहा हैं।

हमारे यहां हिंदी में भिन्न स्थिति है। हिंदी के शीर्षस्थ साहित्यकार अभी इसी पचड़े में पड़े हैं कि विज्ञान लेखन को साहित्य माना जाए या नहीं। कहानी, कविता, उपन्यास लिखने वाले बड़े-बड़े पुरस्कारों से सम्मानित होते हैं, जबकि अच्छे से अच्छे विज्ञान लेखक की साहित्य के क्षेत्र में चर्चा तक नहीं होती।

जहां साहित्य में विज्ञान लेखन की यह स्थिति है वहां विज्ञान कथाओं का सृजन भला कैसे संभव होता? यदि विज्ञान-कथाएं लिखी भी जाएगी तो साहित्य में उन्हें कितना स्थान मिलेगा। सहज ही कल्पना की जा सकती है।

प्रायः विज्ञान कथा (साइंस फिक्शन) और फंतासी (साइंस फैंटेसी) को लोग एक ही अर्थ में लिया करते हैं। लेकिन दोनों में काफी अन्तर है। महान विज्ञान कथाकार आसिमोव ने कथाओं को दो वर्गों में विभाजित किया है। यथार्थवादी तथा अतियथार्थवादी। यथार्थवादी कथाओं का कथानक हमारे वर्तमान या अतीत के ज्ञात परिवेश के इर्द–गिर्द विकसित होता है। अतियथार्थवादी कथाओं में ऐसे अज्ञात परिवेश की घटनाएं वर्णित होती हैं जिनके बारे में हमारा ज्ञान अत्यंत सीमित या न के बराबर होता है। ये कथाएं आमतौर पर विज्ञान को आधार बनाकर लिखी जाती हैं। इन कथाओं को दो उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है। विज्ञान कथा (साइंस फिक्शन या साईफाई) तथा फंतासी (साइंस फैंटेसी)। 'फैंटेसी' शब्द

जिस ग्रीक मूल से उत्पन्न है उसका अर्थ है कल्पना। अतः आज जब हम किसी कथा को फैंटेसी कहते हैं तो हमारा मतलब ऐसी कथाओं से होता है जो विज्ञान के नियमों से सीमाबद्ध न होकर पूर्णतः रचनाकार की कल्पना पर सृजित की जाती हैं।

लेकिन विज्ञान कथा, फैंटेसी से काफी भिन्न है। विज्ञान कथा ठोस वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित होती है। इसमें कल्पना की उड़ान जरूर हो सकती है लेकिन यह कल्पना वैज्ञानिक नियमों की अवहेलना नहीं करती। उदाहरणस्वरूप यदि किसी कथाकार ने गुब्बारे पर बैठाकर अपने कहानी के नायक को चंद्रमा की यात्रा करवा दी, तो यह कभी विज्ञान कथा हो ही नहीं सकती। क्योंकि गुब्बारे से अन्तरिक्ष की यात्रा सम्भव ही नहीं है। यह तो सर्वज्ञात तथ्य है कि चन्द्रयात्रा अन्तरिक्ष यान से ही सम्भव है। गुब्बारे से चन्द्रयात्रा करवाने वाली कहानी अच्छी फंतासी भी नहीं कही जा सकती। लेकिन यही फंतासी आज से करीब दो सौ साल पहले काफी लोकप्रिय हो सकती थी क्योंकि तब तक न तो अन्तरिक्ष यान बने थे और न लोग अन्तरिक्ष के रहस्यों को ही जानते थे। बाबू देवकीनन्दन खत्री ने अपने उपन्यासों में अनेक तिलिस्मी घटनाओं का वर्णन किया है। इन घटनाओं के पीछे वैज्ञानिक तथ्य बहुत कम हैं कल्पना की उड़ान अधिक है। इन्हें फंतासी की ही श्रेणी में रखा जाएगा।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक और विज्ञान कथाकार डॉ. जे. वी. नर्लीकर ने एक रोचक विज्ञान कथा लिखी है 'धूमकेतु'। कथा के अनुसार धूमकेतु बड़ी तेजी से पृथ्वी की ओर बढ़ा आ रहा था। वैज्ञानिकों की गणना के अनुसार इसका धरती से टकराना तय था। धरती से टकराने के बाद धरती की वही स्थिति होनेवाली थी जो करीब साढ़े पांच करोड़ साल पहले डायनासोरों के युग में हुई थी। धरती पर भीषण तबाही और सर्वनाश की आशंका सर्वत्र व्याप्त हो गई थी। धरती को इस संभावित खतरे से मुक्त करने के लिए निश्चय किया गया कि धूमकेतु को धरती पर पहुंचने के पहले ही अन्तरिक्ष में विस्फोट से उड़ा दिया जाए। ऐसा ही किया गया। धूमकेतु को उड़ा दिया गया। यह छोटे-छोटे टुकड़ों में होकर धरती के वायुमंडल में आया और जलकर खाक हो गया। जिस समय वैज्ञानिक धरती को बचाने के लिए यह सारा उपक्रम कर रहे थे ठीक उसी समय पंडितों पुरोहितों ने भी पूजा पाठ शुरू कर दिया। और जब धरती धूमकेतु के खतरे से मुक्त हो गई तो पंडितों ने भी अपनी पीठ ठोंकी। इस कथा में लेखक ने कहीं विज्ञान के मूलभूत सिद्धांतों की अवहेलना नहीं की। यह हिंदी की एक आदर्श विज्ञान कथा अनूदित कही जा सकती है। दरअसल डॉ. नर्लीकर ने अपनी विज्ञान कथाएं मराठी में लिखी हैं जिनका हिंदी अनुवाद किया गया है।

हिंदी में विज्ञान कथाओं की वर्तमान स्थिति की विवेचना करने के पूर्व आइए जरा अपने अतीत में भी झांक लें। हमारे प्राचीन धर्म-ग्रन्थों में अनेक ऐसी घटनाएं वर्णित हैं जो आज के विकसित वैज्ञानिक युग में एक एक कर सच साबित हो रही हैं। हजारों साल पहले जब जमीन पर आधुनिक विज्ञान के चरण भी नहीं पड़े थे हमारे मनीषियों के दिमाग में ऐसी ऊंची कल्पनाओं का जन्म लेना आश्चर्यजनक लगता है। भगवान राम का लंका से पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या लौटना, युद्ध के समय ब्रह्मास्त्रों एवं अन्य घातक अस्त्र शस्त्रों का

उपयोग, महाभारत में संजय द्वारा धृतराष्ट्र को युद्ध का आंखों देखा हाल बताना, गांधारी के गर्भपिंड द्वारा सौ पुत्रों का जन्म, भगवान शंकर द्वारा अपने पुत्र गणेश के सिर में हाथी का सिर रोप देना जैसी घटनाएं हमारे पुराणों और धार्मिक ग्रन्थों में वर्णित हैं। तब का पुष्पक विमान और आधुनिक वायुयान, तब का ब्रह्मास्त्र और आधुनिक मिसाइल और परमाणु बम, तब के गर्भपिण्ड द्वारा शिशु जनन तथा आधुनिक परखनली शिशु तथा तब गणेश के सिर में हाथी के सिर का रोपाण और आधुनिक सर्जरी में कितनी समानता है। इन सब के बावजूद इन्हें विज्ञान कथाओं की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। क्योंकि तत्कालीन समाज की विज्ञान और प्रौद्योगिकी इतनी उच्च नहीं थी जहां इस तरह की घटनाएं संभव हो सकतीं। लेकिन ये कल्पनाएं अति उच्च स्तर की हैं। इन्हें फंतासी तो कहा जा सकता है।

जहां तक हिंदी में आधुनिक विज्ञान कथा साहित्य की बात है इसकी शुरुआत बाबू देवीनन्दन खत्री के तिलस्मी उपन्यासों से मानी जाती है। खत्री जी के उपन्यासों ने हिंदी में विशाल पाठक वर्ग बनाया। यही नहीं, इन उपन्यासों से हिंदी की एक नई विधा विकसित होनी शुरू हो गई। इस विधा को विकसित करने में खत्री जी के बाद उनके पुत्र दुर्गा प्रसाद खत्री, हरे कृष्ण जौहर तथा किशोरी लाल गोस्वामी आदि ने विशेष योगदान दिया। इन लोगों ने रहस्य, रोमांच से परिपूर्ण अनेक तिलसमी उपन्यास लिखे जिनमें अनेकों की पृष्ठभूमि में विज्ञान संबंधी चमत्कार भी शामिल थे।

यह वह समय था जब विदेशों में ठोस वैज्ञानिक तथ्यों पर विज्ञान कथाए। लिखी जाने लगी थीं और उनकी लोकप्रियता तेजी से बढ़ रही थी। ठोस वैज्ञानिक तथ्यों पर हिंदी में विज्ञान कथाएं साठ के दशक से लिखी जानी शुरू हुई। शुरुआत 1953 में डॉ. सम्पूर्णानंद ने अपने लघु उपन्यास 'पृथ्वी से सप्तर्षि मंडल' से किया। 1956 में ओमप्रकाश शर्मा का बड़ा उपन्यास 'मंगल यात्रा' प्रकाशित हुआ। हिंदी का यह पहला उपन्यास था जो विदेशी वैज्ञानिक उपन्यासों की टक्कर का था। उक्त के अलावा डॉ. शर्मा ने जीवन और मानव, पांच यमदूत, समय के स्वामी आदि उपन्यास लिखे। इस दशक में आचार्य चतुरसेन के 'खग्रास' तथा राहुल सांकृत्यायन के उपन्यास 'विस्मृति के गर्भ' भी उल्लेखनीय हैं।

डॉ. ओम प्रकाश शर्मा के बाद विज्ञान कथाओं के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य डॉ. नवल बिहारी मिश्र ने किया। उन्होंने सरस्वती और विशाल भारत में विज्ञान कथाएं लिखीं। बाद में विज्ञान लोक तथा विज्ञान जगत में उन्होंने नियमित कथाएं लिखीं। 1962-63 में उनका उपन्यास 'अपराध का पुरस्कार' विज्ञान जगत में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ। डॉ. मिश्र के प्रमुख विज्ञान कथा संग्रह हैं "अधूरा आविष्कार, आकाश का राक्षस, हत्या का उद्देश्य (1970)। उनकी प्रमुख कहानियां : शुक्र ग्रह की यात्रा, पाताल लोक की यात्रा, उड़ती मोटरों का रहस्य, सितारों के आगे और भी जहां, अदृश्य शत्रु आदि। 60 और 70 के दशक में विष्णु दत्त शर्मा और रमेश वर्मा भी उल्लेखनीय विज्ञान लेखक रहे हैं। रमेश वर्मा ने 'अंतरिक्ष स्पर्श' (1963) सिंदूरी ग्रह की यात्रा, अंतरिक्ष के कीड़े (1969) लिखीं।

अस्सी और नब्बे के दशक में रमेश दत्त शर्मा ने अनेक रोचक विज्ञान कथाएं लिखी। प्रमुख हैं—'प्रयोगशाला में उगले प्राण, हरा मानव' हंसोड़ जीन आदि। इस बीच दैनिक और मासिक पत्रों में अनेक विज्ञान कथाएं प्रकाशित हुई, अनेक नए विज्ञान कथाकार प्रकाश में आए। इनमें प्रमुख हैं : बाल फोंइके, अरविन्द मिश्र, प्रेमानन्द चन्दोला, श्यामसरन 'विक्रम', विष्णुदत्त शर्मा, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक', डॉ. नवल बिहारी मिश्र, शुकदेव प्रसाद, सुधा मस्करा और सुशील कपूर आदि। इन लेखकों ने हिंदी में विज्ञान कथा साहित्य को स्थान दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। हिंदी की कई पत्रिकाओं ने समय संमय पर विज्ञान कथा विशेषांक निकाले जो काफी चर्चित हुए। इनमें प्रमुख हैं : 'नन्दन' (1969), पराग (1975), विज्ञान प्रगति (1978), धर्मयुग (1980), मेला (1981), विज्ञान (नवम्बर 1984 जनवरी 1985) तथा विज्ञान (फरवरी 1985), पराग (1984), सारिका (सितम्बर प्रथम पक्ष-1985) सोवियत लिटरेचर (जून 85) तथा चंपक (जून 1999) आदि।

हिंदी में विज्ञान कथा लेखन के क्षेत्र में उचित वातावरण बनाने में अनूदित साहित्य ने उल्लेखनीय योगदान दिया है। 'सारिका' के सितम्बर 1985 के अंक में अरुण साधू लिखित 'विस्फोटक' (मराठी) और मोहन संजीवन लिखित 'मैं मरना चाहता हूं' (तमिल) के हिंदी अनुवाद प्रकाशित हुए। राशेल कार्सन के प्रसिद्ध उपन्यास 'द साइलेंट स्प्रिंग' का हिंदी अनुवाद प्रेमानंद चंदोला द्वारा नवनीत में छपा। गुणाकर मुले ने आसिमोव का 'शिशु रोबोट' तथा विक्टर कोमारोव का दूसरी धरती तथा रमेशचन्द्र शर्मा ने गोर बिडाल के 'छुद्रग्रह' उपन्यासों का हिन्दी रूपान्तर किया। प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. जयंत विष्णु नार्लीकर के वैज्ञानिक उपन्यास 'धूमकेतु' और 'वयं रक्षामः' (मराठी) के हिंदी अनुवाद हिंदी जगत में काफी लोकप्रिय हुए हैं।

हिंदी की अपेक्षा अन्य कुछ भारतीय भाषाओं में विज्ञान कथा साहित्य ज्यादा समृद्ध है। टाटा इन्स्टीट्यूट आफ फंडामेंटल रिसर्च में खगोल भौतिकी के प्रोफेसर डॉ. जयंत विष्णु नार्लीकर ने अपने वैज्ञानिक उपन्यास मराठी में लिखे हैं। इन उपन्यासों के हिंदी अनुवाद बहुत लोकप्रिय हुए हैं। आज मराठी, बांग्ला, तमिल, तेलुगु की पत्र पत्रिकाओं में हिंदी की अपेक्षा अधिक विज्ञान कथाएं लिखीं और पढ़ी जा रही हैं।

मराठी में विज्ञान कथा को बढ़ावा देने में 'नवल' नामक पत्रिका की अच्छी खासी भूमिका रही है। इसके संपादक अनंत अंतरकर मराठी विज्ञान कथा के प्रवर्तक माने जाते हैं। उनकी प्रेरणा से मराठी में कई विज्ञान कथाकार पैदा हुए जिनमें डी.पी. खवटे काफी चर्चित हैं। उनका कथा संग्रह 'मांझ नाव रमाकांत पालवकर' मराठी विज्ञान कथा साहित्य की नींव कहा जाता है। बंगला में पहली विज्ञान कथा 'ह-ज-ब-ल-र' मानी जांती है, जिसे प्रसिद्ध फिल्म निर्देशक सत्यजित राय के पिता सुकुमार राय ने लिखा था। यह कथा लेविस कैरोल की 'एलिस इन वंडरलैंड' से प्रभावित थी। सुकुमार राय की 'प्रोफेसर हेशोराम होशियार' भी काफी चर्चित विज्ञान कथा रही है। इसके बाद प्रेमेन्द्र मिश्र की खोनाडा नामक धारावाहिक विज्ञान कथा काफी चर्चित रही। राय इन्स्टीट्यूट बम्बई के प्रोफेसर सुकुमार विश्वास ने 'ओ कलकत्ता'; में अंतरिक्ष में मानव बस्ती की अवधारणा पर अच्छा उपन्यास लिखा।

आज के वैज्ञानिक युग में वैज्ञानिक तथ्यों को समझने में विज्ञान और तकनीकी की भावी दिशा और आशंकाओं की परख के लिए विज्ञान कथाएं बहुत उपयोगी माध्यम हैं। यह एक ऐसा माध्यम है जिसके माध्यम से जटिल से जटिल वैज्ञानिक सिद्धांत रोचक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। शिक्षण के क्षेत्र में भी विज्ञान कथाओं का विशेष महत्व है। विज्ञान कथाओं की उपयोगिता के संदर्भ में आसिमोव अपने बचपन की याद करते हैं। आसिमोव के अनुसार उनके पिता आसिमोव को पाठ्यकम के अलावा केवल 'अमेजिंग स्टोरीज' ही पढ़ने की छूट देते थें यह विश्व की पहली विज्ञान कथा पत्रिका थी। यह छूट आसिमोव को उनके पिता ने इसलिए दी थी क्योंकि विज्ञान कथाएं केवल कथाएं ही नहीं थीं वरन् उनमें विज्ञान भी मौजूद था। विज्ञान कथा में अपनी बढ़ी हुई रुचि के लिए आसिमोव पत्रिका की क्विज प्रतियोगिता को श्रेय देते हैं। जिसके हल के लिए उन्हें अरुचिकर विज्ञान कथाएं भी पढ़नी पड़ती थी।

बच्चों और किशोरों को वैज्ञानिक तथ्यों से परिचित कराने के लिए विज्ञान कथाओं से अच्छा और कोई माध्यम हो भी नहीं सकता। उदाहरण के लिए पचास के दशक में छपी आसिमोव की दो विज्ञान कथाएं 'लकी स्टार' व 'ओशन्स ऑफ वीनस' को शुक्र ग्रह पर व्याख्या देने से पहले बच्चों को पढ़ाने हेतु दिया जा सकता है। पचास के दशक में, जब ये विज्ञान कथाएं लिखी गईं, उपलब्ध ज्ञान के अनुसार शुक्र एक गर्म पर जल-आप्लावित ग्रह था, जिसमें पृथ्वी के 'डायनासोर युग' के प्राणियों के रहने की कल्पना की गई थी पर अब यह एक स्वीकृत तथ्य है कि शुक्र जहरीले बादलों से आवृत एक लाल तप्त ग्रह है, जिस पर जीवन तो क्या एक बूंद पानी भी संभव नहीं है! अब यदि यह विज्ञान कथा बच्चों को पढ़ने को दी जाए तथा अगले दिन कक्षा में (या घर पर ही) उन्हीं से पूछा जाए कि क्या शुक्र पर समुद्र है? सम्भव है, बच्चों का उत्तर 'हां' में हो। तब बच्चों को यह बताया जा सकता है कि वैज्ञानिकों के अनुसार इस समय शुक्र पर 600 डिग्री फारेनहाइट (60°F) ताप है। क्या इतने ताप पर भी आसिमोव की विज्ञान कथा में वर्णित सागर में पानी सम्भव है? ऐसे ही अनेक रोचक प्रश्न किए जा सकते हैं और प्राप्त उत्तरों को ध्यान में रखते हुए विषय से सम्बन्धिता नई वैज्ञानिक जानकारियां दी जा सकती हैं।

हिंदी साहित्य में यदि विज्ञान कथाओं को प्रतिष्ठित करना है तो हमें कई स्तरों पर प्रयास करने होंगे। विज्ञान की विविध शाखाओं के लिए अपनी विशिष्ट तकनीकी पारिभाषिक शब्दावली आयोग को इस बारे में ध्यान देना चाहिए। पारिभाषिक शब्दावली के अभाव में हिंदी का रचनाकार अभी अंग्रेजी शब्दों से ही अपना काम चला रहा है। अंग्रेजी के रचनाकारों ने विज्ञान कथा के क्षेत्र में नए-नए शब्दों की खोज की है और उन्हें गढ़-गढ़ कर काफी लोकप्रिय बना दिया गया है। उदाहरण स्वरूप मानव जैसे गुलाम के लिए दो शब्द आये एन्ड्रायड (Android) तथा रोबोट (Robot), एन्ड्रायड की उत्पत्ति ग्रीक मूल के शब्द एन्ड्रोज (Andros) से तथा रोबोट की व्युत्पत्ति चेक के रोबोटा (Robota) से हुई है। एन्ड्रायड और रोबोट दोनों शब्दों का उपयोग ऐसी मानवाकृति के लिए किया गया जो मानव तो नहीं था लेकिन मानव के इच्छानुसार कार्य करता था। दोनों शब्दों के एक ही अर्थ में उपयोग

से भ्रम की स्थिति बन सकती थी। शीघ्र ही विज्ञान कथाकारों ने इसका हल निकाल लिया। रोबोट उस मानवाकृति को कहा गया जो पूर्णतया धातुनिर्मित थे। जबकि एन्ड्रायड, मानवीय ऊतकों से मिलते-जुलते पदार्थों से निर्मित कृत्रिम मानव के लिए कहा गया। हिंदी के रचनाकार अपनी विज्ञान कथाओं में 'रोबोट' शब्द का धड़ल्ले से इस्तेमाल कर रहे हैं। लेकिन रोबोट की जगह अब इसका सन्निकट 'रोबो' और हिंदी का शब्द 'यन्त्रमानव' भी खूब प्रयोग हो रहा है। लेकिन एन्ड्रायड के लिए अभी भी हिंदी के रचनाकार कोई लोकप्रिय शब्द नहीं ढूढ़ पाए हैं।

विज्ञान कथाओं में पात्रों का चारित्रिक विकास न हो पाना एक दूसरी समस्या है। दूसरे शब्दों में, हम यो कह सकते है कि विज्ञान कथा में कथानक और कथोपकथन के सिवा और कुछ नहीं होता। ऐसा लगता है कि विज्ञान कथाकारों को पात्रों के चरित्र-निर्माण का अवसर ही नहीं मिल पाता! बात कुछ हद तक सही भी है। खुद आसिमोव यह स्वीकार करते हैं कि विज्ञान कथा का अधिकांश कथानक तो उस अपरिचित परिवेश से पाठकों का तादात्म्य (परिचय) स्थापित करने में पाठकों का ज्ञान अबोध शिशु के ही सदृश होता है! यही कारण है विज्ञान कथा में पात्रों का चारित्रिक विकास दर्शाने का समय कथाकार को नहीं मिल पाता। पर यदि कोई विज्ञान कथाकार चाहे और वह कर सके तो इस पक्ष का पर्याप्त महत्व मिल सकता है। हमारे देश में तो नैतिक मूल्यों और चरित्र का बड़ा महत्व है। संभव है पाश्चात्य विज्ञान कथा की इस कमी को दूर करने को श्रेय हमें ही मिलना हो!

लेखन एक कला है जो निरंतर अभ्यास से निखरती है। कहानियां लिखने के लिए तथ्यों के अलावा सामाजिक सम्बन्धों का ताना बाना बुनने की कला भी आनी चाहिए। बात यदि विज्ञान कथा की है तो इसमें केवल लेखन कला से ही काम चलाने वाला नहीं। इसके लिए विज्ञान की जानकारी भी आवश्यक है। बिना विज्ञान की जानकारी के लेखक फंतासी तो खिल सकता है लेकिन विज्ञान कथा नहीं। लेखक विज्ञान की किसी शाखा में विशेषज्ञ हो या वैज्ञानिक हो तब तो वह और भी अच्छी विज्ञान कथा लिख सकता है। डा. नर्लीकर उच्च कोटि की विज्ञान कथाएं इसीलिए लिख पाए क्योंकि वे खुद भी उच्च कोटि के वैज्ञानिक हैं।

हमारे कहने का यह आशय कदापि नहीं है कि जिसके पास विज्ञानप की डिग्री नहीं है वह विज्ञान कथाकार नहीं बन सकता। लेकिन उस कथाकार को कम से कम उतना विज्ञान तो जानना ही होगा जितना उस कथा के विकास के लिए आवश्यक हो। उदाहरणस्वरूप कथा का अन्तरिक्ष यान यदि 'टिटान' उपग्रह पर पहुँचता है तो कथा का विकास ऐसे ढंग से किया जाना चाहिए कि टिटान के बारे में अब तक की सभी जानकारी से वह मेल खाएं जो बातें अज्ञात हैं उन पर कल्पना की जा सकती है। लेकिन यह कल्पना भी तर्क पर आधारित होनी चाहिए। यदि कोई कथाकार अपना नायक टिटान पर उतारता है लेकिन टिटान को वृहस्पति का उपग्रह बताता है तो यह कथा एकदम गलत होगी। क्योंकि टिटान वृहस्पति का नहीं अपितु शनि का उपग्रह है।

आज जब सारी नए-नए वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण नए तरह के संकटों से जूझ रही है, विज्ञान कथाएं ही समाज को नई दिशा दे सकती है। हमारी धरती आज नाभिकीय हथियारों के ढेर पर रखी है। प्रदूषण पूरे वायुमण्डल, जलमण्डल और जैवमण्डल को तबाह कर रहा है। बेतहाशा बढ़ती जनसंख्या, एड्स और कैंसर जैसी भयावह बीमारियां, अकाल, भुखमरी जैसी समस्याएं हमारे सामने मुंह बाए खड़ी हैं! इनसे बचने का रास्ता कौन सुझाएगा? निश्चय ही यह रास्ता हमें आज का लेखक और खासकर विज्ञान लेखक ही सुझा सकता है। इन समस्याओं के सम्बन्ध में तीव्र जनजागरण और जनमत तैयार करने के लिए विज्ञान कथाएं एक अच्छा माध्यम बन सकती हैं।

धूरपुर, इलाहाबाद-212110

भाषा और साहित्य की जागृति राष्ट्रीय उन्नति के मार्ग की पहली मंजिल है।

—पुरुषोत्तम दास टंडन

साक्षरता से ही विकास की गति में वृद्धि संभव

—शैलेश कुमार श्रीवास्तव

हमारा देश भारत एक विकासशील देश है। यह 1947 से ही विकासशील देश के रूप में जाना जाता है। हालांकि देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और बौद्धिक क्षेत्रों में बड़ी तेजी से विकास हुआ है, बदलाव भी दिखाई देता है परन्तु देश की समग्र स्थिति में कोई खास-परिवर्तन नहीं हुआ है। आजादी के समय की तैंतीस करोड़ जनसंख्या इस इक्कीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में एक अरब के आंकड़े तक पहुंच रही है। कृषि, उद्योग और व्यापार में अतिशय विकास के बाद भी देश की ढ़ांचागत सुविधाओं में कोई अन्तर नहीं आ पाया है। जनसंख्या—वृद्धि के अनुपात में गरीबी की सीमा रेखा के नीचे रहने वालों की संख्या लगातार बढ़ती गई है। देश की जनसंख्या के मात्र 15% उच्च वर्ग के लोगों ने देश के संसाधनों का सारा लाभ अपने पक्ष में कर रखा है। जो थोड़ा बहुत लाभ गरीब बहुसंख्यकों को मिलता है वह उनके लिए ऊंट के मुँह में जीरा ही साबित होता है। देश का सुविधाभोगी वर्ग के नगरों और कस्बों में रहता हुआ सारी सुविधाओं का भरपूर उपभोग करता है, परन्तु देश की बहुसंख्यक 85% जनसंख्या गाँवों और शहरों में बड़ी ही अमानवीय परिस्थितियों में अपना जीवन-निर्वाह कर रही है। निर्धनता, भूख और बीमारियों से ग्रस्त बहुसंख्यक भारतीय जनता की बड़ी ही दयनीय स्थिति हैं बेरोजगारी की समस्या विकट है। हैजा, महामारी तथा अन्य संक्रामक रोगों से जनजीवन त्रस्त है। शिक्षा और स्वास्थ्य की न्यूनतम सुविधाएं भी सर्वत्र अनुपलब्ध हैं। ये स्थितियां एक ऐसे भारत का चित्र प्रस्तुत करती हैं जिसमें किसी तरह भी बहुसंख्यक जनता सुरक्षित नहीं है। इसके कई मूलभूत कारणों पर पड़ताल करने पर जो वास्तविकता, जो कड़वी सच्चाई सामने आती है वह बहुसंख्यक भारतीय जनता की निरक्षरता और अशिक्षा है।

दुर्दशा का मूल निरक्षरता और अशिक्षा

देश की जनता दुर्दशाग्रस्त है, इसके कई कारण हैं। ऊपर से देखने पर यह प्रशासन और योजनाओं की विफलता के कारण उत्पन्न स्थिति मानी जा सकती है, पर सच्चाई यह है कि प्रशासन के लोकहितकारी स्वरूप का था सरकारी योजनाओं का जनता ने अपने पक्ष में कोई सार्थक उपयोग नहीं किया है। जनता की दुर्दशाग्रस्त स्थिति के लिए सारी-बाहरी प्रतिकूल परिस्थितियों के होने पर भी जनता स्वयं जिम्मेदार है। वह अपने श्रम का वैज्ञानिक ढंग से उपयोग नहीं कर पाती, अपने आय को जीवन की मूलभूत सुविधाओं के लिए सही ढंग से वितरित नहीं कर पाती है। बहुसंख्यक निरक्षर जनता स्वयं के लिए चलाए गए लोक कल्याणकारी कार्यों के बारे में अनभिज्ञ रहती है। फलतः सभी जनहित कार्यक्रमों का लाभ विशाल नौकरशाही मनमाने ढ़ंग से उठाती है। वृहद खेतिहार जनता खेतों में सदियों पुराने परम्परागत उपकरणों-प्रबिधियों और घटिया बीजों का उपयोग करते हुए कृषि के साथ-साथ

1368 HA/2000—7

अपने मूल्यावान श्रम को बर्बाद करती ही है पर अपने गुजारे भर का उत्पादन भी नहीं ले पातीं।

इन सारी भयावह स्थितियों की जांच करते हुए यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि जनता की इस दुर्दशा का कारण क्या है। अपने मूलस्वरूप में यह कारण दुर्दशाग्रस्त जनता की जागरूकता में कमी है, यह कमी है—उनकी अशिक्षा और अज्ञानता के कारण और इसमें कोई संदेह नहीं है कि विशाल भारतीय बहुसंख्यक जनता की अशिक्षा और-अज्ञानता का कारण है उनकी निरक्षरता। बहुसंख्यक जनता निरक्षर है, इसलिए अज्ञानता के अंधकूप में पड़ी हुई है। अज्ञानता और अशिक्षा के कारण उनमें बुद्धि और समझदारी की कमी है। बुद्धि और समझदारी की कमी के कारण वह अपनी दुर्दशा के लिए दुखी तो है—परन्तु परिस्थितियों की नासमझी के कारण जागरूकता से शून्य है, जागरूकता न होने के कारण जनता उपलब्ध संसाधनों का सही ढ़ंग से उपयोग नहीं कर पाती है और दीन-हीन दुदर्शाग्रस्त स्थिति में रहने को विवश है। इस सारी समस्याओं का निवारण विशाल बहुजन को साक्षर बनाकर ही किया जा सकता है। साक्षरता कार्यक्रम अपने इन्हीं अर्थों में जनता की सर्वांगीण समझ और विकास के लिए वरदान स्वरूप है।

साक्षरता का समन्वित अर्थ :

साक्षरता अपने सीधे-सादे अर्थों में अक्षर ज्ञान है। "अक्षर-ज्ञान" की इसका व्युत्पत्तिपरक अर्थ भी है, परन्तु अक्षर ज्ञान को साक्षरता का संकुचित अर्थ माना जाता है। अक्षर के सम्बन्ध को (साक्षरता से) सही ढंग से पारिभाषित करने के लिए "अक्षर" का व्यापक अर्थ स्पष्ट होना अनिवार्य है। अक्षर के सम्बन्ध में भारतीय मनीषा बहुत ही प्रामाणिक और बेहतर कल्पना रखती है। "अक्षर" ही ब्रह्म है, क्योंकि अक्षर मनुष्यता और ज्ञान का हेतु है अक्षर-शक्ति मंत्र शक्ति है, क्योंकि हमारे आस-पास की ध्वनियों जो हमें लगातार प्रभावित करती रहती हैं, अक्षर ही हैं। परन्तु फिर भी अक्षर एक माध्यम के रूप में ही प्रामाणिक है। जब ध्वनि लिपिबद्ध होती है तो अक्षर हो जाती है, जब ध्वनियां इसी तरह अपना-सार्थक विस्तार करती हैं तो अक्षरमूला ज्ञान हो जाती हैं। इस प्रकार, यदि लिपिबद्ध ध्वनि-अक्षर है तो लिपिबद्ध ध्वनियों का अपनी सार्थकता में ज्ञान होना ही साक्षरता है।

'उपरिलिखित 'ज्ञान' पुस्तकों के रूप में... स्मृतियों के रूप में हजारों-हजार वर्षों से मानवता की सेवा करता आ रहा है। आज हजारों वर्षों की अर्जित मानवीय उपलब्धियां हमारे ज्ञान विस्तार के लिए खुली हुई हैं तो अक्षर और साक्षरता के कारण। इन अर्थों में अक्षर की सत्ता ब्रह्म सत्ता है, अक्षर मात्र लिपि भर नहीं है। इसी अक्षर का ही ज्ञान साक्षरता है जिससे मानव के लिए साधारण से साधारण ज्ञान से लेकर विश्वस्तरीय ज्ञान विज्ञान की उपलब्धियां सहज ही प्राप्त हैं। वेदों, पुराणों, स्मृतियों, महाकाव्यों से लेकर वैज्ञानिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक ग्रन्थों, पत्र-पत्रिकाओं, आधुनिक ज्ञान-विज्ञान का साक्षात्कार साक्षरता से ही संभव है। इस तरह साक्षर व्यक्ति अपनी साक्षरता के बल पर ज्ञान-विज्ञान,

साहित्य, कला की पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं आदि के द्वारा लौकिक ज्ञान से लेकर आध्यात्मिक ज्ञान तक की उपलब्धि प्राप्त कर सकता है।

साक्षरता और विकास में सहसम्बन्ध

साक्षरता का विकास से सीधा सुपरिभाषित और स्पष्ट संबंध है। साक्षरता शिक्षा को बढ़ावा देती है, ज्ञान के लिए प्रेरित करती है, इसलिए मानव की समझ और सामन्जस्य की स्थिति में गुणात्मक सुधार आता है, जो उसके चतुर्दिक विकास के रास्ते खोल देता है। साक्षरता केवल शिक्षा के द्वारा ही विकास को प्रभावित नहीं करती, बल्कि जागरूकता और समझदारी पूर्ण दृष्टिकोण विकसित करके उसका सार्थक उपयोग सुनिश्चित करके भी प्रभावित करती है।

अर्थात् एक साक्षर व्यक्ति अपनी जागरूकता अपने सुलझे हुए दृष्टिकोण और अपने अध्ययन द्वारा अर्जित ज्ञान से अपने विकास के लिए नए-नए रास्ते खोलता है। इसके लिए विकसित देशों से उदाहरण लिए जा सकते हैं। वही देश विकसित है जहां साक्षरता और शिक्षा का व्यापक रूप से प्रसार है। आज वही देश तीव्र गति से विकास करता दिखाई दे रहा है जहां साक्षरता और शिक्षा का व्यापक रूप से प्रसार है। जहां की जनता साक्षरता और शिक्षा से सम्पन्न है। दक्षिण एशियाई देशों में बहुसंख्यक जनता निरक्षर हैं, इसलिए दीन-हीन और दुर्दशाग्रस्त है। सारे संसाधनों के होते हुए भी विकास की प्रतिगामी दक्षिण एशियाई बहुसंख्यक जनता अपने पिछड़ेपन के लिए स्वयं जिम्मेदार है, भारत के विकास की गति निरक्षरता के कारण ही तेज नहीं हो पा रही हैं।

अपने ही देश में प्रान्तवार विकास की गति अलग-अलग है। जैसा साक्षरता का प्रतिशत अलग-अलग होने के कारण है। केरल पूर्ण साक्षर राज्य है (90%) वहां की जनता विकास और उपलब्धियों के नए-नए मानदण्ड स्थापित कर रही है—दूसरी तरफ बिहार राज्य है जिसकी साक्षरता देश में न्यूनतम (34.5%) है। बिहार देश का एकमात्र ऐसा राज्य है जिसके उपलब्ध संसाधन (खनिज और मानव) पूरे एशिया को स्वर्ग बना सकते हैं। ऐसे राज्य की 85% जनता अमानवीय और नारकीय परिस्थितियों में रहती हुई विश्व की सारी उपलब्धियों को नकार रही है। स्पष्ट है जहां शिक्षा और साक्षरता के अकाल के कारण ही ऐसा है। इस प्रकार साक्षरता और शिक्षा के विकास से सहसंबंध को समझते हुए अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग तर्कों से समझा जा सकता है।

साक्षरता और शिक्षा

महात्मा गांधी साक्षरता और शिक्षा के भेद पर एक तर्कसंगत-दृष्टिकोण अपनाते हुए अपनी एक पुस्तक में लिखते हैं कि शिक्षा—महत्वपूण है और साक्षरता गौण। साक्षरता अपने में शिक्षा नहीं है। बिना साक्षरता के भी जन-मानस को बुद्धिमान और ज्ञानवान देखा गया है। परन्तु

1368 HA/2000—8A

यह अपनी तरह का एकांगी सच है, क्योंकि निरक्षर सुनी हुई और कण्ठस्थ की हुई बातों को ज्ञान के रूप में धारण करता है और समय-समय पर विवेकानुसार उपयोग करता है। सुनी जाने वाली बात अफवाह भी हो सकती है परन्तु ग्रन्थों से तर्कसंगत ढ़ंग से पढ़ा जाने वाला तथ्य प्रामाणिक होता है। शिक्षा की कोई भी वैज्ञानिक शुरूआत साक्षरता के बिना असंभव हैं। साक्षरता शिक्षा की प्राथमिकी है, एक मूल आधार है। साक्षरता शिक्षा रूपी महल के नींव की ईंट है। व्यापक साक्षरता से ही शिक्षा का विकास सम्भव है। शिक्षा के विकास के लिए साक्षरता प्रतिशत सतत बढ़ाते रहना आवश्यक है अन्यथा सारी योजनाएं धरी की धरी रह जाती हैं। जिन देशों और प्रान्तों में साक्षरता का प्रतिशत अधिक होता है वहां शिक्षा का प्रतिशत भी उसी अनुपात में बेहतर होता है। साथ ही शिक्षा का स्तर वहीं गुणवत्तापूर्ण है, जहां साक्षरता का प्रतिशत बेहतर है। साक्षर व्यक्ति यदि ढंग से शिक्षित नहीं है तो भी वह स्वाध्याय के द्वारा उपलब्ध अथाह ज्ञान राशि के जलधि में गोते-लगाकर बुद्धि और वैभव की मुक्तामणियां प्राप्त कर सकता है। व्यक्ति यदि साक्षर है तो वह स्वंय अपनी ज्ञान-पिपासा को तृप्त करने के साथ-साथ स्वाध्याय करते हुए अपने ज्ञान का सतत विस्तार कर सकता है, उसका विकास कर सकता है। इस तरह साक्षरता शिक्षा का अति महत्वपूर्ण बिंदू है।

एक निरक्षर व्यक्ति के लिए विश्व ज्ञान की सारी उपलब्धियां निरर्थक हैं। वह आंखों के रहते हुए भी दृष्टिहीन है। उसके लिए ज्ञान विज्ञान की बड़ी-बड़ी बातों का कोई अर्थ नहीं है। निरक्षर व्यक्ति इस तरह अज्ञानता के अन्धकूप में पड़ा अपनी मानवी बुद्धि से-अनजान मूर्खतापूर्ण जीवन व्यतीत करने को विवश है। इसलिए ऐसी जनता का दुख-दर्द दूर करने के लिए साक्षरता और शिक्षा दोनों अनिवार्य हैं।

साक्षरता और जागरूकता का विकास : मानव अनादि काल से एक जागरूक प्राणी रहा है, यह जागरूकता ही मानव के चतुर्दिक विकास का सबसे अहम बिंदू है, कुछ अपने आस-पास की प्रकृति के रहस्यों को जानने की जागरूकता में बराबर कुछ न कुछ उपलब्धियों को अर्जित करता रहा है। परन्तु जब यह जागरूकता की तुष्टि के लिए अन्धविश्वासों और कर्मकाण्डों ने ने उन्हें जकड़ लिया। वे भूत, प्रेत, पिशाच, मंत्र, तंत्र, यज्ञ हवन आदि-अंधविश्वासपूर्ण कर्मों में अपने जीवन की जागरूकता की तिलांजलि देकर दीन-हीन हो गए। आज भी वह विकृति परम्परागत रूप से समाज के विशाल जनमानस के बीच अपनी जोरदारपूर्ण मौजूदगी दर्ज किए हुए है। इस तरह के स्थितियों से अलग भी जागरूक हीनता ने विकृतियों की सृष्टि की है। वर्तमान में समाज के प्रत्येक वर्ग में समान रूप से जागरूकता नहीं है।

दीन-हीन निर्धन और निरक्षर लोग मात्र अपनी क्षुधा-पिपासा की तृप्ति में अपना जीवन होम कर रहे हैं। एक निरक्षर के लिए दुनियां की सारी खुशियां उपलब्धियां कोई-मायने नहीं रखती। इन बातों को दृष्टि में रखकर समझा जा सकता है कि व्यक्ति निरक्षर इसलिए है कि वह जागरूक नहीं है, एक व्यक्ति जागरूक इसीलिए नहीं है, क्योंकि वह निरक्षर है। साक्षरता और जागरूकता में यही संबंध है। जो जागरूक होगा वह सारी परेशानियों के बावजूद स्वयं को साक्षर बना लेगा, साथ जो व्यक्ति साक्षर होगा वह समाचार पत्र देखते ही

1368 HA/2000 –8B

लपक पड़ेगा—देश दुनियां और समाज में क्या-क्या परिवर्तन हो रहा है वह यह जानने का प्रयास करेगा। वह अपने को विकास का अग्रगामी बनाते हुए स्वयं को परिवर्तनों के साथ बेहतर ढ़ंग से समायोजित करेगा। वहीं एक निरक्षर समाचार पत्र की तरफ नजरें ही नहीं उठाएगा और आगे बढ़ जाएगा। एक साक्षर व्यक्ति अपने थोड़े बहुत अध्ययन से अपने पढ़ने की जागरूकता के साथ-साथ देश, समाज और अखिल विश्व के प्रति जागरूक हो उठता है। इस जागरूकता में अपने अपने सारे अंधविशवासों की तिलांजलि दे देता है, पूर्वाग्रहों से मुक्त हो उठता है और तर्कपूर्ण-व्यवहारपूर्ण जीवन जीने का प्रयास करता है। वह यह भी जानना चाहता है कि कम से कम संभावनों से अपना जीवन कैसे सुखी बना सकता है। वह जानना चाहता है कि ऐसा क्या-क्या किया जा सकता है कि अपने कठोर श्रम का अधिक से अधिक लाभ कि तरह उठाया जा सके। वह अपने उपलब्ध संसाधनों का सही और वैज्ञानिक ढंग से उपयोग करके अपने जीवन की बेहतर गुणवत्ता सुनिश्चित करता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि साक्षरता व्यक्ति की जागरूकता को तीव्र करके उसे ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रेरित करती है। इस प्रकार साक्षर व्यक्ति जागरूकता के साथ-साथ अपने आस-पास का जन जीवन बेहतर ढ़ंग से प्रभावित करता है।

साक्षरता एवं जनसंख्या नियन्त्रण : आजादी के समय देश की जनसंख्या तैंतीस करोड़ के आस-पास थी, नई शताब्दी के प्रारंभ में यह जनसंख्या एक अरब के आंकड़े को पार करने जा रही है, अर्थात् आजादी के पचास वर्षों के उपरान्त आज देश की जनसंख्या तिगुनी हो गई है, राष्ट्र के समक्ष यह बड़ी भारी चुनौती है। जनसंख्या वृद्धि की अतिशयता के कारण सरकार द्वारा संचालित योजनाओं का लक्ष्य कभी पूरा नहीं हो पाया न ऐसा हो सकता है। देश के लिए जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ पूरा नहीं हो पाया न ऐसा हो सकता है। देश के लिए जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ उत्पादन वृद्धि करके जनता के जीवन की मूलभूत सुविधाओं को मुहैया करा पाना वर्तमान स्थिति में बहुत ही कठिन होता जा रहा है। जनसंख्या वृद्धि और उत्पादन वृद्धि के भिन्न-भिन्न चरित्र के कारण ही ऐसा है—कई प्रख्यात अर्थशास्त्री अपनी स्थापनाओं में इसको परिभाषित करते रहे हैं, इनमें माल्थस प्रमुख है। वे लिखते हैं कि "जनसंख्या वृद्धि की प्रकृति गुणात्मक होती है जबकि उत्पादन की प्रकृति धनात्मक।" इसीलिए जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ उत्पादन में वृद्धि करते रहना असम्भव है। इस विचार को सार्थक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है—देश के पास जो संसाधन 1947 में उपलब्ध थे, वे आज भी ज्यों के त्यों हैं परन्तु जनसंख्या तीन गुनी बढ़ चुकी है। कृषि क्षेत्रों में उत्पादन वृद्धि के लिए बेहतर प्रविधियां इस्तेमाल करके प्रति हेक्टेयर फसलों की पैदावार जो हम बढ़ाते जा रहे है वह अंकगणितीय तरीके से ही बढ़ाई जा सकी है, परन्तु जनसंख्या वृद्धि के स्तर पर कदापि नहीं बढ़ाई जा सकती।

देश की बंजर और वनाच्छादित भूमि को कृषि योग्य भूमि में परिवर्तित करने के बाद भी समस्या ज्यों की त्यों हैं, इसलिए आज राष्ट्र की पहली प्राथमिकता जनसंख्या-वृद्धि पर नियन्त्रण रखना है। जनसंख्या-वृद्धि का मूल कारण है—ऊंची जन्म दर। अपने देश में वर्तमान जन्म दर विश्व के बहुत से विकसित देशें की तुलना में काफी अधिक है। "अपने

देश में यह दर प्रति हजार जनसंख्या के पीछे 31 प्रतिवर्ष है जबकि आस्ट्रेलिया में इसी स्थिति में 15, जर्मनी में 10, ब्रिटेन में। 4 और अमेरिका में 16 प्रतिवर्ष है।"

इस बारे में अपनी पुस्तक "भारतीय अर्थशास्त्र" में डॉ. सी. मामोटिया और डॉ. जैन स्थापित करते हैं कि "जनसंख्या वृद्धि के मूलकारणों में देश की अधिकतम जनसंख्या की निरक्षरता अशिक्षा और उनका निम्न जीवन स्तर है। अशिक्षित होने के कारण लोग रूढ़िवादी हैं, और परिवार कल्याण के महत्त्व को नहीं जानते हैं, साथ ही बच्चों की वृद्धि उनके निम्न जीवन स्तर पर कोई विशेष-प्रभाव नहीं डालती है, क्योंकि उनका जीवन स्तर पहले से निम्न है। इसके विपरीत उनकी यह धारण कि बच्चा सात-आठ वर्ष का होने पर कमाने में सहायक होगा, जनसंख्या वृद्धि में योगदान देती है।" ये पंक्तियां निरक्षरता का जनसंख्या-वृद्धि पर प्रभाव दर्शाती हैं और जनसंख्या नियन्त्रण ले लिए साक्षरता की वकालत करती है।

यह बात नहीं है कि जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ सरकार के लाख प्रयासों के बावजूद साक्षरता नहीं बढ़ी है, परन्तु बढ़ हुई साक्षरता दरें जनसंख्या वृद्धि की दर के झुका बले बेमानी हैं, और यह तब और बेमानी है, जब सरकार अपना खजाना निरक्षरता के समूल समाप्ति के लिए खोल कर बैठी हो। यदि जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ साक्षरण दर भी बढ़ाई जा सकती तो सरकारी योजनाएं अवश्य ही निरक्षरता उन्मूलन के लिए लक्ष्य के अनुरूप सफल हो सकती थी, परन्तु आंकड़े इसके विपरीत असफलता ही प्रदर्शित करते हैं—1951 में जहां देश की जनसंख्या 35 करोड़ के लगभग थी वहीं साक्षरता की दर 16.7% थी जबकि तब शिक्षा के क्षेत्र में निरक्षरता के उन्मूलन में सरकार की कोई अर्थपूर्ण भूमिका नहीं थी। 1997। की बढ़ी हुई डेढ़ गुनी से अधिक 54.8 करोड़ जनसंख्या के पीछे साक्षरता दर 24% हुई (यह तब हुई जब सरकार निरक्षरता उन्मूलन और शिक्षा के प्रसार के लिए प्राणपण से लगी हुई थी)। 1981 में बढ़ी 68.3 करोड़ जनसंख्या के पीछे साक्षरता दर 36.2% हुई। 199। में 84,6 करोड़ जनसंख्या के पीछे साक्षरों का प्रतिशत 52% हुई। 199। में 84,6 करोड़ जनसंख्या वृद्धि से उबरकर साक्षरता प्रतिशत तेजी से बढ़ा लेगी, वह उसके सारे प्रयासों के बावजूद असंभव हो गया। सरकार ने सन् 2005 तक पूर्ण साक्षरता का लक्ष्य रखा है परन्तु वर्तमान स्थिति को देखते हुए यह एक टेढ़ी खीर साबित होगी क्योंकि एक अनुमान के मुताबित 2005 तक देश की जनसंख्या 1 अरब 44 करोड़ 20 लाख तक हो जाएगी, और सरकारी योजनाओं की रीढ खोखली कर देगी। फिर भी सरकार ने साक्षरता और जनसंख्या शिक्षा को एक राष्ट्रीय नेटवर्क से जोड़कर उत्साहपूर्ण और महत्त्वाकांक्षी योजना को जारी रखा, जिसमें एक व्यापक समन्वित दृष्टि से तथ्यों को स्पष्ट किया गया है जो निम्न—

"1976 की जनसंख्या शिक्षा की नीति में इस बात पर बल दिया गया है कि शिक्षा ही जनसंख्या को कम करने में सबसे अधिक सहायक हो सकती है। इस-नीति के मुख्य बिंदू बालिकाओं की शिक्षा और शिक्षा के सभी स्तरों पर जनसंख्या-शिक्षा का समायोजन है। शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य आदमी में अपनी समस्याओं के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना है ताकि वह उन समस्याओं से उबरने का निदान कर सके। इस चेतना द्वारा प्राप्त ज्ञान को वह अपनी

गतिविधियों द्वारा प्रकट करता है। उसकी जीवनधारा उसी प्रकार बन जाती है। वह अपने जीवन का नियोजन उसी आधार पर करने लगता है।"

—जनसंख्या शिक्षा राज्य पत्रिका राज्य संसाधन केन्द्र, लखनऊ।

साक्षरता स्वास्थ्य एवं शिशु कल्याण साक्षरता को स्वास्थ्य से सीधा संबंध होता है। निरक्षर और अशिक्षित व्यक्ति स्वास्थ्य को किस प्रकार से सही रखा जाए इस पर कम ही ध्यान देते हैं। वह ऐसी स्थितियों को तनिक भी बुरा नहीं मान पाते जिनमें अधिकाधिक गन्दगीपूर्ण और अस्वास्थ्यकर स्थितियां हैं। वे सफाई और खानपान को बड़ी लापरवाही से लेते हैं। फलतः कहां, कब और कैसे किन-किन रोगों से उसका परिवार ग्रस्त हो जाए कहा नहीं जा सकता। निरक्षर और अज्ञानी व्यक्ति एक तरफ अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूक नहीं रहता वहीं वह दूसरी तरफ अपने परिवार के स्वास्थ्यपूर्ण स्थितियों की उपेक्षा करता है, अवहेलना करता है, फलतः उसकी गरीबी निर्धनता, निरक्षरता और लापरवाही, सब मिलकर उसके परिवार के सदस्यों को कुपोषण के साथ-साथ भयानक बीमारियों से ग्रस्त कर देते हैं और वह चिकित्सा के प्रति भी लापरवाही बरतता हुआ, अपने परिवार का जीवन संकटग्रस्त कर देता है।

अधिकतर देखा गया है कि देश में कुल जितनी मौतें होती हैं, उनमें से 50% मौतें पांच वर्ष से कम उम्र के बच्चों की होती हैं। पैदा होने वाले एक हजार बच्चों में से लगभग 10% अर्थात 100 बच्चे एक वर्ष की आयु भी पूरी नहीं कर पाते हैं जो जीवित बच जाते है उनमें से भी कुछ बच्चे शारीरिक, मानसिक रूप से पूरी तरह विकसित नहीं हो पाते, इन बच्चों की मृत्यु और उनके पूरी तरह से विकसित न होने के कारण छह प्रमुख बीमारियां हैं। ये बीमारियां हैं—टिटनेस, डिप्थीरिया (गलाघोंटू), काली खांसी, खसरा, टी.वी क्षय रोग और पोलियो। इन रोगों से बड़ी आसानी से बच्चों को बचाया जा सकता है, यदि बच्चों को समय से इन बीमारियों के टीके लगवा दिए जाएं या दवा की खुराक दे दी जाए तो शिशु-मृत्युदर कम हो जाएगी। इन रोगों के अलावा बच्चों को होने वाली एक मुख्य बीमारी और भी है—यह बीमारी हर बच्चें को कम से कम एक बार जरूर होती है, वह है डायरिया, अर्थात दस्त। एक सर्वेक्षण के मुताबिक नौ वर्ष के भीतर मरने वाले बच्चों में 50% बच्चे केवल डायरिया से ही मर जाते हैं यह बीमारी जितनी ही खतरनाक है, उसका इलाज भी उतना ही सरल है, बस जरूरत है समझदारी और जागरूकता की। एक साक्षर और शिक्षित व्यक्ति अवश्य ही ऐसी समझदारी और जागरूकता प्रदर्शित करता है जिससे उसके सम्पर्क में आने वाले परिवार, पड़ोसी और रिश्तदारों के बच्चों के जीवन का संकट बहुत कम किया जा सकता है।

शिशु मृत्यु दर का सीधा संबंध स्त्रियों की साक्षरता और शिक्षा से भी है जहां-जहां स्त्री-साक्षरता अधिक है, उन राज्यों में यह पाया गया है कि वहां की शिशु मृत्यु दर काफी कम है। इसका उदाहरण उत्तर-प्रदेश और केरल को लेकर दिया जा सकता है—उ.प. में स्त्री साक्षरता दर 26.02% है, तो इसी दर के मुकाबले शिशु मृत्यु दर 150 शिशु प्रति हजार है।

जबकि इसके उलटे केरल में स्त्री-साक्षरता दर 70.% है, तो शिशु मृत्युदर मात्र 37 प्रति हजार है।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि पढ़ी-लिखी माँ के मरने वाले बच्चों की संख्या अनपढ़ मां की तुलना में काफी कम है। यह शंका उठ सकती है कि शायद केरल में स्वास्थ्य सुविधाएं अधिक होंगी। शायद वहां की प्रति व्यक्ति आय अधिक होगी जिससे वहां के लोग बच्चों के पाषण व चिकित्सा सुविधाओं पर अधिक व्यय करते होंगे। परन्तु वास्तव में ये दोनों बातें ही सही नहीं हैं। न तो केरल में चिकित्सा सुविधाएं ही अधिक हैं और न ही प्रति व्यक्ति आय। प्रति व्यक्ति आय पूरे देश में पंजाब राज्य की सबसे अधिक है परन्तु वहां भी शिशु मृत्यु दर 81 प्रति हजार है। शिशु-मृत्यु-दर का सीध संबंध मां की शिक्षा से है। एक सर्वेक्षण के अनुसार अशिक्षित मां के बच्चों की मृत्यु दर 81 प्रति हजार है, प्राइमरी शिक्षित मां के बच्चों की मृत्यु काफी कम 59 प्रति हजार है। वहीं प्राइमरी से उपर शिक्षित मां के बच्चों की मृत्युदर काफी कम 59 प्रति हजार है। वही प्राइमरी से ऊपर शिक्षित मां के बच्चें की मृत्युदर उपरोक्त से काफी कम 49 प्रति हजार है।

उपरोक्त विवरणों से स्पष्ट है कि व्यक्ति की साक्षरता उसके परिवार के स्वास्थ्य और कल्याण हेतु बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अक्सर ऐसा हेता है कि बहुसंख्यक निरक्षण अशिक्षित जनता परिवार में किसी भी सदस्य के स्वास्थ्य संबंध तकलीफों के इलाज के लिए जादू-टोने, टोटके आदि का सहारा लेते हैं बजाय बीमारी का वैज्ञानिक इलाज कराने के अन्धविश्वासों के मूल में जनता की अशिक्षा और निरक्षरता ही है। जो व्यक्ति साक्षर है, वह परिवार के किसी सदस्य के रोगग्रस्त होने पर या स्वास्थ्य संबंधी तकलीफ पैदा होने पर वैज्ञानिक एवं सही इलाज के लिए चिकित्सकों की परामर्श लेने में कोई कोताही नहीं बरतता, भले ही उसे पैसों की कितनी ही तंगी क्यों न हो। एक साक्षर व्यक्ति स्वास्थ्य सेवा संबंधी उपलब्ध सभी संसाधनों का बेहतर उपयोग करते हुए स्वास्थ्य संबंधी विकास को सुनिश्चित करते हुए विकास को गति देता है।

साक्षरता एवं कृषि का विकास

भारत एक कृषि प्रधान देश है। इस देश की 70% जनता कृषि पर ही अपनी जीविका का निर्वाह करती है। आधुनिक युग में कृषि के क्षेत्र में नए-नए अनुसंधानों एवं आविष्कारों से नए-नए तरीकों सीखा प्रविधियों की खोज से बहुत ही क्रान्तिकारी बदलाव आया है। यह बदलाव देर से ही सही, सीमित जगहों पर ही सही, अपने देश में भी आ गया है। जुताई करने के लिए ट्रैक्टर, कल्टीवेटर, आदि के अलावा छोटे-छोटे हल्के और बढ़िया हलों का भी आविष्कार कृषि के लिए वरदान सिद्ध हुआ है। अच्छी उपज देने वाली नए-नए प्रसंस्कारिता बीजों के साथ फसलों में बीमारियों की रोकथाम के निए तरह-तरह की दवाओं कीटनाशकों की उपलब्धता से अच्छी फसल की पैदावार अच्छी पैमाने पर ली जा सकती है। अनाज भंडारण की नए-नए तकनीकों ने कृषकों को महाजनों के चंगुल से मुक्त करके उन्हें खुशहाल बनाया

है। हरत क्रांति अपने देश में सफल रही हैं, परन्तु उस स्तर पर नहीं जितनी की आशा की गई थी। हरित क्रांति से देश की जनता आज अन्न संकट से पूर्णतया मुक्त है परन्तु फिर भी लक्ष्य अधूरे हैं। कारण विशाल बहुसंख्यक जनता की निरक्षरता, अशिक्षा और कृषि क्षेत्र में विकास के प्रति अनभिज्ञता और साथ ही उनके पूर्वाग्रह भी।

आज कृषि में नई तकनीक के सफलीभूत होने पर भी अपने देश के 50% किसान अपने घिसे-पिटे, पुराने परम्परागत-यन्त्रों और प्रविधियों से कृषि कार्य करते हुए अन्न उत्पादन करते हैं। परिणामस्वरूप वे आज इतना उत्पादन भी नहीं कर पा रहे हैं कि अपने परिवार की खाद्य जरूरतों को पूरा कर सके। शिक्षा, स्वास्थ्य और अच्छ रहन-सहन की सुविधाएं तो उनसें सैकड़ों मील दूर हैं। यदि ये बहुसंख्यक कृषक जिनके पास भूमि के छोटे-छोट अपर्याप्त टुकड़े हैं, साक्षर और शिक्षित हो जाएं तो वे जान सकेंगे कि उसी भूमि पर वह क्या पैदा करें, किस तरह पैदा करें कि उनका जीवन स्तर सुधर जाए। साक्षर हो जाने पर देश के सभी किसान अपने उपलब्ध संसाधनों और अपने कठिन श्रम का सही-सही सदुपयोग करते हुए, अपनी स्थिति बेहतर बनाते हुए राज्य और राष्ट्र को समृद्ध बना सकेंगें, राष्ट्र का विकास सुनिश्चित कर सकेंगे। देश में ही यह देखा जा सकता है कि जिस-जिस राज्य के कृषक अपेक्षाकृत अधिक शिक्षित हैं वे अच्छा उत्पादन करते हैं, मंहगा उत्पादन करते हैं और उसकी सही ढ़ंग से उचित दाम पर बिक्री करके अपने श्रम का भरपूर लाभ उठाते हैं। वहीं कम शिक्षा वाले राज्यों में कृषि कर्म कृषकों के लिए एक मजबूरी है, बोझ है, एक शाप है, दुःस्वप्न है। इजराइल का कृषि कर्म पूरे विश्व के लिए मिशाल है। इसलिए नहीं कि वहां की भूमि बहुत अच्छी है या सरकार बहुत अधिक धन खर्च करती है, या लोगों की आय अधिक है। इजरांइल कृषि क्षेत्र के लिए बंजर क्षेत्रों से पटा, इंच-इंच पानी से तरसता है.....परन्तु आज कृषि की उन्नत तकनीकों का प्रयाग वहां के किसान इस तरह करते हैं कि वे सब कुछ बड़े ही अच्छे पैमाने पर उगाने में सफल है। ऐसा वहां कृषकों की साक्षरता और बेहतर शिक्षा के कारण है। अपने ही देश में पंजाब, हरियाणा, गुजरात, महाराष्ट्र आदि राज्यों के किसान अपनी छोटी, बड़ी जमीनों पर वैज्ञानिक ढंग से कृषि करते हुए लगातार तेजी से विकास कर रहे है, ऐसा उनकी साक्षरता दर अधिक होने के कारण ही संभव हुआ है। इसलिए शेष राज्यों के बहुसंख्यक किसानों की दशा को बेहतर स्तर पर लाने के लिए उन्हें साक्षरता और शिक्षा के दायरे में लाया जाना बहुत हल आवश्यक है। इसी तरह निरक्षरता और अशिक्षा के कारण पशु-पालन से देश के किसानों को तथा देश को जो आय सम्भव है, उसका 1/20 भी नहीं हो पा रहा है। यह सर्वविदित तथ्य है कि पशुओं के मामले में अपना देश विश्व का दूसरा बड़ा देश है परन्तु दुग्ध उत्पादन के रेटिंग में कहीं नहीं है। हां चमड़ा उत्पादन भले ही ठीक माना जाए फिर भी यह उत्पादन इतना स्तरीय नहीं बन पा रहा है कि देश को कोई विशेष लाभ हो। देश में श्वेतक्रांति की असफलता का सबसे बड़ा कारण निरक्षरता ही है। हालांकि-गुजरात और राजस्थान में श्वेतक्रांति सफल रही है, फिर भी पूरे देश के स्तर पर स्थिति शर्मनाम है। पशुपालन से पर्याप्त दूध, मांस, ऊन और चमड़ा आदि प्राप्त करने के लिए किसानों में पशुपालकों में (वैज्ञानिक दृष्टि का होना बहुत ही आवश्यक है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने के लिए किसानों और पशुपालकों को साक्षर और शिक्षित किया

जाना बहुत ही आवश्यक है जब ऐसा होगा तभी कृषि और पशुपालन के विकास को कोई तीव्र गति दी जा सकेगी।

साक्षरता श्रमिक-गुणवत्ता और औद्योगिक विकास

साक्षरता एवं शिक्षा के सम्पन्न व्यक्ति के बारे में यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि ऐसा व्यक्ति अपनी योग्यता और शक्ति का अधिक से अधिक सदुपयोग करेगा। वह बुद्धि और तकनीक का प्रयोग सही जगह और सही समय पर करेगा। यह मान्य तथ्य है कि संसार के सभी कठिन कार्यों को बुद्धि और योग्यता से द्वारा बड़े ही सुविधाजनक ढंग से सम्पादित किया जा सकता है। ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति के दिनों में इसका शानदार उदाहरण देखा जा सकता है। परम्परागत कृषि से अपनी सम्पूर्ण क्षमता का उपयोग करके इंग्लैण्ड के कृषक वर्ग ने जब उत्पादन का उच्चतम लक्ष्य पा लिया, तब उनके सामने यह समस्या आई कि अब उत्पादन में वृद्धि करे तो करें कैसे फलतः वहां के कृषकों की साक्षरता, शिक्षा बुद्धि और ईमानदार प्रयत्नों ने उत्पादन बढ़ाने के लिए नए-नए आविष्कारों का विचार दिया फलतः जुलाई के आधुनिक तरीकों उन्त बीजों का प्रयोग, कीड़ों से फसलों को बचाने हेतु कीटनाशकों का उपयोग तथा फसलों की मड़ाई करके अनाज निकालने की नई प्रविधियों का विकास करके साथ ही अन्न भंडारण की नई-नई तकनीकों से कृषि, उत्पादन को बीस गुना बढ़ा दिया। इसी क्रम में मशोनीकरण का विकास होते-होते औद्योगिक क्रांति ने जोर पकड़ लिया।

उपर्युक्त उदाहरण में श्रमिक गुणवत्ता और औद्योगिक विकास के लिए साक्षरता और शिक्षा की भूमिका को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। साक्षर और शिक्षित श्रमिक चाहे वह कृषि क्षेत्र का हो या औद्योगिक क्षेत्र का जब वह अपनी क्षमता का अधिक से अधिक उपयोग करने के बारे में सोचेगा तो निश्चय ही उसकी वर्तमान क्षमता बढ़ाने के तरीके मिल जाएगें। ये तरीके, ये प्रतिधियां एक श्रमिक को दस-दस श्रमिकों के कार्य की गुणवत्ता प्रदान कर देती हैं। इससे काम करने की प्रविधि के अलावा तकनीकी समझ, सम्बद्धज्ञान और अध्ययन सही समय पर सही ढंग से क्रियाशीलता तथा हल्के तेज-हथियारों का प्रयोग बहुत महत्वपूर्ण बिंदू सिद्ध होते हैं। एक साक्षर और शिक्षित श्रमिक इन सभी बिंदुओं पर अपनी जागरूकता के साथ खरा उतर सकता है। बशर्ते कि उसके प्रयत्नों में ईमानदारी हो। ऐसा श्रमिक न केवल अपने लिए विकास और पदोन्नति के अवसर पैदा कर सकता है, बल्कि वह औद्योगिक उत्पादन बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हुए राष्ट्र के विकास को गति दे सकता है। आज औद्योगिक जगत के श्रमिक वर्गों में बड़ी अफरातफरी है। तमाम तरह के मजदूर नेता निरक्षर और नासमझ मजदूरों को लुभावने सपने दिखाकर न केवल उनकी क्षमता को घटाते हैं, बल्कि उन्हें हड़तालों आदि में हिस्सा दिलवाकर पथभ्रष्ट कर देते हैं, जिसका असर या होता है कि उनके लिए अपनी जीविका चलाना मुश्किल हो जाता है। मिलें और फैक्ट्रियां हड़ताल होने पर बंद रहती हैं जिससे उत्पादन पर प्रतिकूल असर पड़ता है, मिलें बरबाद होने लगती हैं। फलतः एक दिन उनमें तालाबंदी हो जाती है और श्रमिक हितों का

सबसे बड़ा खतरा उनके सामने खड़ा हो जाता है। जागरूक, साक्षर और शिक्षित मजदूर अपने मस्तिष्क को उपयोग करने के कारण मजदूर नेताओं के ऐसें बहकावे में कभी नहीं आ सकता, जिससे भविष्य में उसकी जीविका को ही खतरा पैदा हो जाए। ऐसा मजदूर साक्षर और शिक्षित होने के कारण नेताओं के दिखाए गए लुभावने सपनों के पीछे का क्रूर खेल समझ जाएगा और अपने को अपनी गुणवत्ता को, और अपनी क्षमता को कदापि खतरे में नहीं डालेगा। वह साक्षर होने के नाते यह जानेगा कि किस प्रकार उसके श्रमिक हित वास्तव में सुरक्षित हो सकते हैं।

इन सारी स्थितियों के अलावा कम्पनियों में मजदूरों के सामने ऐसे अवसर अक्सर सामने आते है, जब उन्हें नई तकनीक का प्रशिक्षण देने के लिए चुना जाता है। ऐसी स्थिति में साक्षर और शिक्षित मजदूर अपने इन्हीं योग्यताओं के बल पर विकास का एक बड़ा अवसर पा जाता है, वहीं दूसरी तरफ निरक्षर और अशिक्षित मजदूर पछतावे के साथ हाथ मलते रह जाते है। दस निरक्षर मजदूरों के बीच एक साक्षर मजदूर की भूमिका बड़े ही काम की हो जाती है, क्योंकि साक्षर और शिक्षत होने के कारण उसका दायित्व उन मजदूरों के प्रति जिम्मेदार पूर्ण हो जाता है। ऐसा मजदूर स्वयं तो सामान्य बुराइयों से दूर रहेगा ही उन्हें भी (बाकियों को भी) सही रास्ते पर ले जाएगा। निरक्षर और अशिक्षितों के हितों की सुरक्षा भी एक साक्षर, शिक्षित और बुद्धिमान मजदूर ही कर सकता है। इस प्रकार साक्षरता और शिक्षा बहुत ही विस्तुत फलक पर अपना प्रभाव क्षेत्र बनाती है, जिससे श्रमिकों के कार्यों में गुणवत्ता की वृद्धि के साथ-साथ उनके हितों की भी सुरक्षा सुनिश्चित होती है और श्रमिकों को स्वयं के विकास का अवसर तो मिलता ही है, साथ ही उनका परिवार-व्यापक समाज और औद्योगिक उत्पादन भी गुणात्मक वृद्धि/विकास की गति-प्राप्त करता है।

साक्षरता और जनजीवन के जीवन-स्तर में सुधार : साक्षरता और शिक्षा का समाज के सभी-लोगों के जीवन स्तर में सुधार से बड़ा महत्वपूर्ण रिश्ता है निरक्षर और अशिक्षितों की आय उसकी उपयोगिता तथा उसके जीवन स्तर में कोई तालमेल नहीं होता है। ऐसा व्यक्ति चाहे जितना धन कमा ले, परन्तु फिर भी नरक जैसी अमानवीय स्थिति में परिवार सहित पड़ा हुआ पूरे परिवार का भविष्य अंधकारमय कर देता है।

निरक्षरता और अशिक्षा का आय से प्रतिकूल संबंध है। ऐसा-व्यक्ति जो निरक्षर और अशिक्षित है, सामाजिक बुराइयों से सबसे अधिक प्रभावित होता है। अक्सर ऐसा व्यक्ति अपने पूरी आय से परिवार की बेहतरी सुनिश्चित करने की जगह अविवेक के साथ अपनी सारी आय को बढ़ाने और जुए में खर्च कर जाता है। चूंकि निरक्षर व्यक्ति अपनी आय को बढ़ाने और उपलब्ध आय के सही वितरण के बारे में कोई व्यवस्था नहीं करता, फलस्वरूप वह अपने परिवार सहित भूख, अशिक्षा-निरक्षरता, कुपोषण, गन्दगी, बीमारी एवं लड़ाई-झगड़ों के तनावों के साथ दुखों के दलदल में फंसा तड़पता रहता है। वह अपने परिवार का सही पोषण तो कर नहीं पाता साथ ही स्वयं निरक्षर होने के कारण शिक्षा की उपयोगिता से अनजान रहकर अपने-परिवार के शिक्षा की भी अवहेलना करता हुआ अपने बच्चों का भविष्य अंधकरमय कर

देता है। निरक्षर और अशिक्षित व्यक्ति न केवल स्वयं ही परेशान रहता है, बल्कि अपनी अगली पीढ़ी का जीवन स्तर भी अपनी तरह निश्चित कर देता है।

निरक्षर व्यक्ति अपनी जीविका और जीवन-स्तर के सुधार के प्रति अक्सर उदासीन पाए जाते हैं। उन्हें न तो अपने आय को बढ़ाने की चिंता होती है, और न ही वे अपने जीवन स्तर में सुधार के प्रति कोई सोच रखते हैं। ऐसा नहीं है कि ऐसे व्यक्ति सपने नहीं देखते परन्तु ऐसे व्यक्ति केवल सपनों में ही मस्त रहने की कोशिश करते है, हालांकि उन्हें सपने में भी चैन नहीं मिल पाता। ऐसा भी अक्सर देखा जाता है कि ऐसी स्थिति में निरक्षर और अशिक्षित व्यक्ति शराब, जुआ, मांग आदि की लत में पड़ जाते हैं और कालान्तर में अपना मानसिक संतुलन खोकर अपने-परिवार का भविष्य अधकारमय कर देते हैं। साक्षर और शिक्षित व्यक्ति अपने आय का अपने और परिवार की बेहतरी के लिए खर्च करने में सदुपयोग करता है। चूंकि सबकी बेहतरी सुनिश्चित करने में उसे अपनी आय से संतुष्टि नहीं होती इसलिए वह आय बढ़ाने के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है। वह अपने श्रम का, संसाधनों का तकनीकी ढंग से उपयोग करता है और नए-नए उपाय खोजता है, परिणामस्वरूप उसकी आय सदैव वृद्धि की तरफ ही उन्मुख रहती है। एक साक्षर व्यक्ति व्यक्तिगत और सामाजिक बुराइयों के प्रति-संवेदनशील होता है इसलिए वह उसकी हकीकत से वाकिफ होता है। फलतः वह सभी बुराइयों से स्वयं को दूर रखता है और परिवार के लोगों के लिए सौहार्द्रपूर्ण और आनन्दपूर्ण स्थिति बनाने में सफल होता है।

एक साक्षर और शिक्षत व्यक्ति लगातार अपने ज्ञान की वृद्धि के प्रति सजग रहता है साथ ही अपने परिवार की शिक्षा की बेहतर स्थिति बनाए रखने की कोशिश करता है, फलतः उसके पूरे परिवार में सही संस्कार विकसित होते हैं और परिवार के साथ-साथ बच्चों का भविष्य अपने आप बेहतर बनता चला जाता है। इस प्रकार जीवन स्तर में सुधार आता है। साक्षर और शिक्षित व्यक्ति स्वास्थ्य के प्रति सदैव सचेत और संवेदनशील रहता है। वह साफ सफाई के साथ-साथ अच्छे खान-पान का महत्व समझता है और सतत् प्रयास करता है कि उसके घर का वातावरण संदेव स्वास्थ्यप्रद रहे। वह अपने बच्चों को रोगों से बचाने के लिए अस्पतालों और चिकित्सकों का सहयोग लेता है, वह परिवार को रोगों से बचाने के लिए हर संभव प्रयास रहता है, फलतः पूरे परिवार के स्वास्थ्यपूर्ण विकास का रास्ता प्रशस्त हो जाता है, जिससे उसके परिवार के जीवन स्तर में गुणात्मक सुधार सुनिश्चित हो जाता है। साक्षर अभिभावक अपने बच्चों (युवा) के रोजगार के प्रति चिंता रखते है— वे सुनिश्चित करते हैं कि उसके बच्चों को उनके स्वभाव और शिक्षा के अनुसार कार्य मिल सके। वे अपने बच्चों में आत्म-विश्वास भरने में सतत प्रयत्नशील रहते हैं, जिससे वे पूरे आत्म-विश्वास और जिम्मेदारी से अपना कार्य करते हुए अपना सुनहरा भविष्य बना सके। इस प्रकार साक्षरता और शिक्षा व्यक्तियों और समाज के जनजीवन पर अनुकूल प्रभाव डालती है।

साक्षरता से ही विकास की गति में वृद्धि संभव : उपर्युक्त तथ्यों से स्थापित होता है कि साक्षरता का व्यक्ति से लेकर अखिल-विश्व के विकास का सीधा सुस्पष्ट और सुपरिभाषित

सम्बन्ध है। जनता की दुर्दशा के मूल कारणों में निरक्षरता और अशिक्षा सबसे महत्वपूर्ण है। साक्षरता से एक तरफ जनता में शिक्षा का व्यापक प्रसार होता है, वहीं शिक्षा की गुणवत्ता के साथ-साथ सभी को समान रूप से लाभान्वित करते हुए उनके (सबके) चतुर्दिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता है। जनता में व्याप्त अन्धविश्वासों, कुरीतियों, रूढ़ियों और कुप्रवृत्तियों पर साक्षरता और शिक्षा द्वारा ही अंकुश लगाया जा सकता है। इन कुप्रवृत्तियों और बुराइयों के समाप्त होने पर साक्षर जनसमुदाय स्वयं को खुशहाल बनाते हुए स्वयं का लगातार विकास करता हुआ क्रमशः समाज और राष्ट्र के विकास में योगदान देता है। साक्षरता के प्रसार से ही राष्ट्र के सामने जनसंख्या वृद्धि की विकट समस्या का समाधान किया जा सकता है, साथ ही लोगों के मन में उनके स्वास्थ्य रहन-सहन, खान-पान के प्रति सुसंस्कार भरे जा सकते हैं। यदि पूरे भारत की जनता साक्षर हो तो राष्ट्र के सामने अशिक्षा, महामारी जनसंख्या वृद्वि, गरीबी, निर्धनता भूख एवं बेकारी जैसी समस्या हो ही नहीं सकती है। यदि ऐसी समस्याएं होती भी तो उसे आसानी से निबटाया जा सकता था। ऐसी समस्या तब होती ही नहीं, और बच्चे को जनम देने वाली ममतामयी मां और जन्म लेने वाले लाडलों के जीवन एवं स्वास्थ्य की बेहतर सुरक्षा हो सकती, जिससे विकास की गति में अवरोध बनी समस्याओं का निराकरण होते ही विकास की गति में तीव्र वृद्धि होती। यदि जनता पूर्ण साक्षर होती तो कृषि उत्पादन रख-रखाव तथा विपणन में गुणात्मक सुधार करके कृषि का विकास करते रहना देश के लिए बहुत ही सुविधाजनक होता, परन्तु साक्षरता की कमी के कारण कृषि विकास की गति बहुत धीमी है, इतनी धीमी कि न तो किसान ही खुशाल है, और न ही देश। उद्योगों कल कारखानों एवं अन्य जगहों पर हाड़तोड़ श्रम करते श्रमिकों की निरक्षरता के कारण ही उनके श्रम का यथोचित उपयोग नहीं हो पाता, जिससे न तो श्रमिक कल्याण ही सुरक्षित हो पा रहा है और न ही औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि हो पा रही है। यदि सभी श्रमिक साक्षर और शिक्षित हों तो औद्योगिक जगत की स्थिति का कायाकल्प ही हो जाए। कुल मिलाकर साक्षरता ही वह कुंजी है जिससे देश की बहुसंख्यक दबी, कुचली, प्रताड़ित, भूखी, नंगी, गरीब जनता अपनी खुशहाली खजाने का ताला खोल सकती है। जन जीवन के जीवनस्तर में सुधार के लिए समाज में सौहार्द और प्रेम के लिए, उत्पादनों में वृद्धि और बेहतर व्यापार के विकास के लिए और राष्ट्र के विकास की गति सुनिश्चित करने के लिए साक्षरता ही वह केंद्रीय बिंदू है जहां से शुरूआत करके इन सारी उपलब्धियों को हासिल किया जा सकता है।

द्वारा श्री सी . एस.श्रीवास्वत, 565 एफ, राजेंद्र पूर्वी, गोरखपुर-27 3015

पुस्तक समीक्षा

I पुस्तक : राजभाषा के 50 वर्ष
लेखक : डॉ. सूर्य प्रसाद दीक्षित/डॉ. गणेश मिश्र
पृष्ठ : 111
मूल्य : 50/-

समीक्षक : डॉ. माजदा असद

राजभाषा हिंदी के स्वर्ण जयंती अवसर पर 'राजभाषा के 50 वर्ष नामक पुस्तक लिखकर डॉ. सूर्य प्रसाद दीक्षित एवं डॉ. गणेश मिश्र ने एक ऐतिहासिक कार्य किया है। उन्होंने प्राक्कथन में बताया है कि भाषा केवल विचार विनिमय का माध्यम न होकर अपने आप में समूची संस्कृति होती है। संस्कृति के परिवर्तन के साथ-साथ भाषा भी परिवर्तित होती है। अमेरिका व यूरोप की भौतिकवादी व्यवस्था के विस्तार के साथ-साथ उनकी भाषा अंग्रेजी भी अनेक देशों में छा गई। अर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक विवरण पद्धति का अपरिहार्य अंग बन गई। परिणामतः उसने अंतर्राष्ट्रीय भाषा का चरित्र ग्रहण कर लिया। भारत में राजभाषा के रूप में हिंदी के कार्यान्वयन में आने वाली अनेक समस्याओं पर भी प्रकाश डाला गया है। हिंदी संबंधी समस्याओं में सर्वोपरि समस्या मानसिकता को माना गया है। अंग्रेजों द्वारा 2 शताब्दियों तक भारत में शासन करने की वजह से उनकी भाषा बड़प्पन की सूचक बन गई। हिंदी और दूसरी क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग हीनता की भावना से प्रेरित हो गया। राजभाषा हिंदी और संबंध में दूसरी समस्या अनुवाद तथा द्विभाषीय प्रविधि की बताई गई है। अंग्रेजी का अनुवाद यंत्र-चालित होने के कारण सुविधा संपन्न बन गया। हिंदी में अनेक द्विभाषीय या बहुभाषीय कोश तो बने लेकिन उनमें एकरूपता नहीं है। संकेताक्षरों और कूट पदों का अभाव है। कंप्यूटर, हिंदी कार्यक्रमों के लिए 21वीं सदी की सबसे बड़ी चुनौती बताया गया हैं प्राक्कथन के अंत में पंच सूत्री अभियान के द्वारा राजभाषा में 50 वर्षीय लम्बित समस्याओं का समाधान खोजने की मंगल आशा की गई है।

पहला अध्याय हिंदी भाषा के उदभव और विकास से संबंधित है। इसमें संक्षेप में हिंदी भाषा के विकास को देखते हुए हिंदी की बोलियों के विभाजन का वर्णन किया गया है। भाषा की चर्चा करते हुए भाषा के विभिन्न स्वरूप-बोली, उपभाषा, विभाषा, जनभाषा, परिनिष्ठित भाषा, साहित्यिक भाषा, संपर्क भाषा, राष्ट्रीय भाषा, राष्ट्र भाषा, राज्य भाषा, संघ की भाषा राजभाषा या क्षेत्रीय भाषा का विवेचन किया गया है। राष्ट्रीय भाषा और राज्य भाषा की संकल्पनाओं का वर्णन करते हुए उन दोनों के अंतर पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। राजभाषा वह भाषा होती है जिसे किसी देश अथवा राष्ट्र के प्रशासनिक कार्यों के व्यवहार में लाया जाता है। सत्ता के उलट फेर का इस पर सीधा प्रभाव पड़ता है। राष्ट्र भाषा को उसका पद आन्तरिक शक्ति के कारण उत्तराधिकार में प्राप्त होता है। राजभाषा के पद पर

यदा-कदा विदेशी भाषाएं भी अधिकार कर लेती हैं। उदाहरण के लिए हमारे देश में बहुत दिनों तक अंग्रेजी राज भाषा के पद पर आसीन रही।

दूसरे अध्याय में राजभाष के विभिन्न चरणों का वर्णन है। स्वतंत्रता से पहले राजभाषा का क्या रूप था इसका विवेचन भी मिलता है। इस वर्णन की विशेष आवश्यकता नहीं थी चूंकि पुस्तक का नाम रखा गया है राजभाषा के 50 वर्ष। स्वतंत्रता आंदोलन में हिंदी और हिंदुस्तानी के झगड़े का विवरण इसमें दिया गया है। 6-7 अगस्त 1949 को राष्ट्रभाषा व्यवस्था परिषद अधिवेशन सेवा समिति द्वारा यह प्रस्ताव पारित किया गया कि देवनागरी में लिखित हिंदी को, देश की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया जाए। अंतर्राष्ट्रीय रोमन अंकों के साथ देवनागरी में लिखित हिंदी को राजभाषा के रूप में स्वीकृति मिल पाई। वातावरण हिंदी के विरूद्ध चला गया संविधान द्वारा 15 वर्षों के लिए उन सभी कार्यों को अंग्रेजी भाषा में करने की वकालत की गई जो पहले अंग्रेजी में हुआ करते थे स्वातंत्र्योतर काल के राजभाषा से संबंधित 'दिवस' सप्ताह और 'पखवाड़े' का वर्णन है, जिसे फैशन के रूप में मनाते हैं। संविधान में वर्णित राजभाषा का रूप यहां भी मिलता है। भारत सरकार के मंत्रालयों को 5 रूपों में हिंदी का प्रयोग करने की सलाह दी गई थी। राष्ट्रपति द्वारा राजभाषा आयोग का गठन किया गया। उसमें अनेक विषयों पर विचार हुआ। आयोग की सिफारिशों का 3 सदस्यों ने विरोध किया। 2 वर्षों तक देश की सबसे बड़ी समस्या राजभाषा की समस्या रही। 1960 में राष्ट्रपति ने एक आदेश जारी किया। 20 मार्च 1961 को गृह मंत्रालय ने कार्यालय ज्ञापन द्वारा सभी मंत्रालयों से कहा—"सरकारी संकल्प हिंदी में पारित हों हिंदी में आए पत्रों का जवाब हिंदी में दिया जाए। फार्मों आदि में अंग्रेजी के साथ साथ हिंदी का प्रयोग भी किया जाए। हिंदी का कार्य साधक ज्ञान रखने वाले अधिकारियों को फाइलों पर हिंदी में टिप्पणियां लिखने की अनुमति दी जाए। राजपत्र के कुछ भाग हिंदी में प्रकाशित हों।" राजभाषा अधिनियम 1963 की धारा 4 में किए गए प्रावधान के अनुसार 1976 में संसदीय राजभाषा समिति के गठन की चर्चा की गई है जिसकी उपसमितियां बनी। इस अध्याय में यह भी बताया गया है कि राजभाषा हिंदी की स्थिति चिंतनीय है। लेखक ने इसके लिए हिंदी वालों को दोषी माना है। यह बात बहुत हद तक ठीक भी है। लेखक ने कहा है "हिंदी पत्रकारिता सड़ रही है।" यह कथन उचित नहीं प्रतीत होता। यह बात ठीक है कि अंग्रेजी शान की चीज और हिंदी उपहास की। तीसरा अध्याय संवैधानिक राजलिपि देवनागरी से संबंधित है। क्या देवनागरी लिपि को राजलिपि मानना उचित है? यहां संविधान के अनेक अनुच्छेद और धाराओं का वर्णन है। लिपि संबंध बहस भी की गई है। इस समस्या को संवैधानिक स्तर पर हल करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। नागरी लिपि के संक्षेपण एवं मानवीयकरण की चर्चा इस पुस्तक के चौथे अध्याय में मिलती है। भारत में पाई जाने वाली विभिन्न लिपियों की चर्चा करते हुए यह भी बताया गया है कि हिंदी भाषा में अन्य भाषाओं की अपेक्षा अक्षरों की संख्या ज्यादा है। लिपि में सुधार के संबंध में भी कुछ सुझाव यहां दिए गए हैं। पांचवें अध्याय में राजभाषा अधिनियम, नीति एवं फलश्रुति पर प्रकाश डाला गया है। छठे अध्याय में राजभाषा का अनुवाद पारिभाषिक शब्दावली प्रशिक्षण और यांत्रिकीकरण की समस्याओं का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत कर इस संबंध में कुछ अच्छे सुझाव

भी दिए गए हैं। उपसंहार में बहुत ही संक्षेप में राजभाषा के रूप में हिंदी की चर्चा की गई है। इस विषय पर और अधिक प्रकाश डाला जा सकता था ताकि 50 वर्षों में हिंदी की प्रगति का स्वरूप खुलकर पाठकों के सामने आता। ऐसा नहीं है कि इन 50 वर्षों में राजभाषा हिंदी में काम नहीं हुआ। विभिन्न मंत्रालयों और विशेष रूप से गृह मंत्रालय ने हिंदी राजभाषा की प्रगति के लिए अनेक सराहनीय काम किए हैं। इसकी चर्चा इस पुस्तक में आनी चाहिए थी। पुस्तक भाव, भाषा, विषय और शैली की दृष्टि से ठीक है। इसकी पृष्ठ संख्या को और बढ़ाया जा सकता था।

सी-105, ईस्ट एण्ड अपार्टमेंट, दिल्ली-110096

II पुस्तक : हिंदी की भगीरथ यात्रा
पृष्ठ : 447
लेखक : डा. कन्हैया लाल गांधी
मूल्य : 400/- रुपए
प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
समीक्षा : राजकुमारी देव

पिछले 25 वर्षों से हिंदी के क्षेत्र में कार्यरत होने के नाते मन हमेशा हिंदी में प्रकाशित अच्छी पुस्तकों को तलाशता रहता है। ऐसी पुस्तक पा जाने पर एक संतोष का अनुभव होता है। हाल ही में हिंदी के विद्वान डा. कन्हैया लाल गांधी की "हिंदी की भगीरथ यात्रा" पढ़ने को मिली। लेखक ने बड़े यत्न से यह पुस्तक तैयार की है जो एक साथ कई विषयों को छूती है।

पुस्तक को मुख्यतः चार भागों में बांटा गया है : पहला भाग हिंदी भाषा के विकास के बारे में है। इसमें हिंदी भाषा की उत्पत्ति, हिमालय से पारादीप तक हिंदी का स्वरूप एवं उसकी यात्रा, संविधान सभा में हिंदी के स्वरूप के संबंध में हुई पूरी बहस, भाषा के नामकरण का मामला तथा हिंदी के समर्थकों और विरोधियों की दलीलों को सही परिप्रेक्ष्य में रखकर भाषा समस्या पर विचार करने और उसका समाधान सुझाने का प्रयास किया गया है। हिंदी अभी तक राजभाषा क्यों नहीं बन पाई ? संविधान के सत्रहवें भाग में अन्तर्द्वन्द्व कहां पर और क्यों है ? क्या नेहरूजी का 1959 का आश्वासन कश्मीर पर दिए गए आश्वासन की भांति एक भारी भूल थी। लेखक ने ऐसे कई जटिल प्रश्नों के उत्तर इस पुस्तक में दिए हैं।

पुस्तक के दूसरे भाग में समकालीन संदर्भ में हिंदी पर सविस्तार चर्चा की गई है। इसमें व्यावहारिक हिंदी, कार्यालयीन हिंदी और अनुवाद जैसे विषयों पर चर्चा है। शब्दावली के निर्माण के लिए सरकार ने कई संस्थाओं की स्थापना की, लेकिन आजादी के पचास वर्ष बाद भी हिंदी प्रचलित क्यों नहीं हो पाई है। लेखक का कहना है कि प्रयोजन मूलक हिंदी के विकास कार्य में उन लोगों को भी साथ लेना आवश्यक है, जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं है। इसके अलावा व्यावहारिक हिंदी की शब्दावली के प्रचलन को व्यापक बनाने के लिए जन संपर्क साधनों का सहयोग जरूरी है।

इसके अतिरिक्त संविधान में हिंदी का स्वरूप, इसकी लिपि क्या हो, कौन से अंकों का प्रयोग किया जाए तथा न्यायालयों और संसद की भाषा आदि के बारे में जितनी भी बहस हुई उसका उल्लेख करके पूरी स्थिति स्पष्ट की गई है। इसके लिए लेखक का प्रयास प्रशंसनीय है। पंडित जवाहर लाल नेहरू, पुरूषोत्तमदास टंडन, अलग राम शास्त्री, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद तथा डा. रघुवीर आदि जैसे विद्वानों के उस समय व्यक्त विचारों को पुस्तक में स्थान देकर पुस्तक को समसामयिक एवं पठनीय बना दिया है।

पुस्तक के तीसरे भाग में सूचना एकत्र करने और संप्रेक्षण का महत्व बताया गया है। एक ओर प्रेस की भूमिका एवं स्वतंत्रता, इलैक्ट्रानिक मीडिया तथा इंटरनेट की क्रांति पर प्रकाश डाला गया है तो दूसरी ओर मीडिया में भाषा के योगदान को भी उजागर किया गया है। कम्प्यूटर के प्रकार एवं प्रयोग, अखबारों, प्रेस एंजेसियों, रेडियो, विज्ञापनों पत्रकारिता से जुड़े विभिन्न नियमों, मापदंडों आदि की एक ही स्थान पर जानकारी देकर गागर में सागर भरने का प्रयत्न किया गया है, जो सराहनीय है।

कुछ लोग यह कहते पाए गए हैं कि हिंदी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी कार्य करना कठिन है अथवा हिंदी में शब्दों की कमी है। परंतु लेखक ने उसका जवाब यह बता कर दिया है कि अंग्रेजी के ऑक्सफोर्ड शब्दकोश में ऐसे अनेक शब्द हैं जिनका मूल स्रोत भारतीय है तथा सहस्त्रों शब्द ऐसे हैं जो भारतीय शब्दों से बने हैं।

पुस्तक के चौथे भाग में हिंदी के विकास की संभावनाओं पर चर्चा की गई है। लेखक का विचार है कि हिंदी के विकास के लिए देश के सभी वर्गों को साथ लेकर चलना होगा एवं अहिंदी भाषियों द्वारा किए गए प्रयासों की प्रशंसा करनी होगी।

लेखक ने इस पुस्तक में अंग्रेजी भाषा के व्याकरण की त्रुटियों की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है और उसकी अवैज्ञानिकता सिद्ध की है। स्वतंत्रता के 50 वर्ष बाद भी हम हिंदी को वह स्थान नहीं दे पाए जो उसे मिलना चाहिए, इसके कारणों का उल्लेख यहां बड़ी बारीकी से किया गया है। भविष्य के लिए जो दिशा निर्देश दिए गए हैं वे निश्चित ही स्वागत योग्य हैं।

"हिंदी की भगीरथ यात्रा" पढ़ने का अर्थ है हिंदी के पूरे इतिहास से गुजरना। साथ ही लेखक ने हिंदी के विरोध में उठने वाले अनेक प्रश्न उठाकर उनका समाधान व उत्तर भी दिया है। हिंदी से संबद्ध अधिनियमों, नियमों की सुस्पष्ट व्याख्या की है जिससे पाठक की सारी शंकाएं दूर हो जाती हैं। भाषा सरल व अभिव्यक्ति स्पष्ट है, कहीं-कहीं उर्दू का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है जिसने विषय को और अधिक ग्राह्य बना दिया है। हिंदी के कार्य से जुड़े अधिकारियों के लिए यह एक उपयोगी पुस्तक साबित होगी।

उपनिदेशक, जब संसाधन मंत्रालय, श्रम शक्ति भवन, नई दिल्ली